हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला १३२

श्रीईश्वरकृष्णविरचिता

सांख्यकारिका

दार्शनिकप्रवर श्रीनारायणतीर्थविनिर्मित-

'सांख्यचन्द्रिका' टीकासहित-सटिप्पण 'हिन्दीव्याख्योपेता'

सटिप्पण हिन्दीव्याख्याकारः

श्री पं० ढुण्ढिराजशास्त्री न्यायाचार्यः



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१



॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
१३२

श्रीईश्वरकृष्णविरचिता

सांख्यकारिका

दार्शनिकप्रवर श्रीनारायणतीर्थविनिर्मित-
'सांख्यचन्द्रिका' टीकासहित-सटिप्पण 'हिन्दीव्याख्योपेता'

सटिप्पण हिन्दीव्याख्याकारः
श्री पं० ढुण्ढिराजशास्त्री न्यायाचार्यः

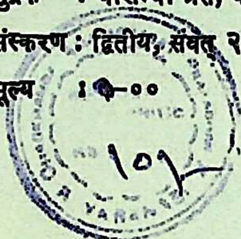
भूमिकालेखकः
प्रो० कान्तानाथशास्त्री तैलङ्गः



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७७

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, संवत् २०३३
मूल्य : ९-००



K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi-221001 (India)
1977
Phone : 63145

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

उपोद्घातः

अथेयं मुद्रयित्वा प्रकाश्यते साङ्ख्यचन्द्रिकाख्या ईश्वरकृष्णविनिर्मितसाङ्ख्य-कारिकाणां दार्शनिकप्रवरैर्यतिवरैर्नारायणतीर्थैर्विहिता सरला टीका ।

दर्शनस्यास्य सकलदर्शनेषु प्राचीनत्वं महत्त्वं च, साङ्ख्येत्यभिधाने हेतुरीश्वर-कृष्णस्य कारिकाकर्तुः कालनिर्णयः, कारिकासङ्ख्याविमर्शश्चेत्यादिकं निखिलमि-दमीयमैतिह्यमस्मत्कृतटिप्पणीसमलङ्कृतायां वाराणसेयसुप्रसिद्धचौखम्बासंस्कृत-सीरीज ग्रन्थालयादचिरप्रकाशितायां गौडपादभाष्यसमन्वितसाङ्ख्यकारिकाभूमि-कायां मदीयप्रियशिष्येण नन्दगिरीत्युपाह्वेन एम० ए० साहित्यशास्त्रिणा कान्ता-नाथतैलङ्गमहोदयेन सम्यगवधारितमतो न तत्र मदीयलेखिन्या अवसरः ।

साङ्ख्यदर्शनस्य सेश्वरवादित्वं निरीश्वरवादित्वं वेत्यपि तत्रैव निर्धारितमिति सामान्यविषयान् दर्शनस्यास्य विहाय चन्द्रिकाकर्तुरेव चरित्रं वक्तुमवशिष्यते ।

तत्र यतिवरोऽयं नारायणतीर्थः साङ्ख्यकारिका इव भाषापरिच्छेदापरपर्यायां कारिकावलीमपि चन्द्रिकोपाह्वयैव व्याख्यया प्रद्योत्य यथा मुक्तावल्यामप्यनिर्दि-ष्टान् कारिकाव्याख्येयांशान् स्वतन्त्रांश्च विचारान् मूलन्यूनतापूर्तिपुरस्सरं निब-ध्नन् स्वीयं न्यायदर्शनपटुत्वमाविश्चकार तथाऽस्मत्संस्कृतात् चौखम्बासंस्कृतसीरीज ग्रन्थालयादेव प्रकाशितात् तन्निबन्धादवगन्तुं शक्यते विद्वद्भिः ।

स चायं नारायणयतिः कः कदा वाऽऽसीदिति जिज्ञासापनोदाय तच्चरितमन्वे-षयद्भिरस्माभिस्तत्कृतचन्द्रिकाग्रिमपद्येन श्रीरामगोविन्दतीर्थकृपाकटाक्षसञ्जात-दार्शनिकदृष्टिर्वासुदेवपण्डितानामन्तेवासी कश्चनैतद्देशीय एव दार्शनिको बभूवेत्य-नुमीयते । अस्य तु सं० १७१८ वैक्रमाब्दः समयो निर्धारितः ऐतिहासिकैः । अनेक न्यायदर्शने कुसुमाञ्जलिकारिका टीका, वेदान्ते सिद्धान्तबिन्दुव्याख्या, योगे योग-सिद्धान्तचन्द्रिकाऽपि व्यरचीति विदन्त्येव दार्शनिकाः ।

तामिमां साङ्ख्यचन्द्रिकामूलार्थमात्रबोधेन साङ्ख्यशास्त्रीयरहस्यं जिज्ञासूनां छात्राणामुपकारार्थं विषमस्थलटिप्पण्या कारिकाश्च भाषानुवादेन विशदीकृत्य यथामति संशोध्य प्रकाशयन् सम्भावये भविष्यतीयं साङ्ख्यदर्शनरसिकानां मनः-सन्तोषजननीति ।

अगस्त्याश्रमः १९९७ — विदुषामनुचरः—

वसन्तपञ्चम्याम् — ढुण्ढिराजशास्त्री

भूमिका

सांख्यदर्शन—की प्राचीनता—

सांख्य दर्शन अत्यन्त प्राचीन दर्शन है। संस्कृत वाङ्मय सांख्यके सिद्धान्तोंसे भरा पड़ा है। बौद्ध पण्डित अश्वघोषने अपने बुद्धचरित नामके काव्यमें भगवान् बुद्धके गुरु अरदाचार्यको सांख्यशास्त्रका वेत्ता कहा है। 'मनुस्मृतिमें' सांख्यके सिद्धान्तोंका अनुसरण करके जगत्की उत्पत्तिका वर्णन किया है। उसीके द्वादशाध्यायमें सांख्याभिमत सत्त्व, रज, तम तीन गुणोंको तथा प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रमाणों को स्वीकार किया गया है। भगवद्गीतामें सांख्य और योगका स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया गया है। 'महाभारतके पञ्चशिख—जनक संवादमें सांख्यशास्त्र के मुख्य २ सिद्धान्तोंका वर्णन मिलता है। उपनिषदोंमें भी सांख्यके प्रायः सभी सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। 'श्वेताश्वतर' उपनिषद्में सांख्यका सर्वप्रथम नामतः उल्लेख मिलता है। 'कठक उपनिषद्' में सांख्यके तत्त्वोंमें कौन किससे बड़ा है इसका विशद वर्णन मिलता है। 'छान्दोग्य उपनिषद्'में सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंका वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य उपनिषदोंमें भी सांख्यके सिद्धान्तोंका यत्र तत्र उल्लेख मिलता है।

कुछ लोग सांख्यदर्शनको बौद्धदर्शनकी अपेक्षा अर्वाचीन तथा उसके सिद्धान्तोंसे प्रभावित मानते हैं। उनका कथन है कि दुःखनिवृत्तिके लिये तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति, यागादि वैदिक कर्मोको व्यर्थ मानना, ईश्वरके विषयमें अनास्था, अहिंसा आदि सिद्धान्त बौद्धागमसे सांख्यमें लिए गए हैं। परन्तु यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि बौद्धोंकी प्राचीन आख्यायिका सांख्यके प्रवर्तक कपिलको बुद्धसे प्राचीन बतलाती है। 'अश्वघोष' भी बुद्धके गुरुको सांख्यका पण्डित कहते हैं। सांख्यमें प्रकृति, पुरुष, सत्त्वादि तीन गुण आदि सिद्धान्त माने गये हैं। बौद्धागममें उनका खण्डन किया गया है। इन बातोंसे तो सांख्यशास्त्र बौद्धगमसे प्राचीन ठहरता है। यदि एकका दूसरे पर असर पड़ा हो तो सांख्यका ही बौद्धागम पर पड़ा होगा।

'सांख्य' यह नाम क्यों पड़ा—

सांख्यशास्त्र का 'सांख्य' यह नाम क्यों पड़ा इस विषयमें तीन मत प्रचलित हैं।

प्रथम मतके अनुसार सांख्य शब्द 'गिनती' वाचक 'संख्या' शब्दसे बना है। सांख्यशास्त्रमें तत्त्वोंकी संख्या पचीस बतलाई गयी है। इसीलिये इसे सांख्य कहते हैं।

यहां यह प्रश्न उठता है। कि वैशेषिक आदि अन्य शास्त्रोंमें भी तत्त्वोंकी संख्या बतलाई गई है, तब उन शास्त्रोंका भी नाम 'सांख्य' क्यों नहीं पड़ा? इसके उत्तरमें यह कहा जाता है कि 'साख्य' सब शास्त्रोंसे प्राचीन है। संख्याके आधार पर एक बार उसका नाम रख देने पर पीछे उत्पन्न होनेवाले शास्त्रोंका उसी आधार पर वही नाम रखना उचित न होता। भेद—बोधन करनेके लिये पीछेके शास्त्रोंके नये नाम रक्खे गये।

दूसरा मत यह है कि सांख्याचार्य द्वारा निर्माण किये जानेके कारण इस शास्त्रका नाम 'सांख्य' पड़ा। यह मत तो अप्रामाणिक प्रतीत होता है, क्योंकि सर्वत्र कपिलका ही इस शास्त्रके निर्माताके रूपमें वर्णन किया गया है।

इस विषयमें तीसरा मत यह है कि प्राचीन कालमें किसी विषय पर प्रमाणपरिष्कृत सरणीसे विचार करनेको 'संख्या' कहते थे। इस विषयमें महाभारत का निम्नलिखित पद्य ध्यान देने योग्य है—

दोषाणाञ्च गुणानाञ्च प्रमाणं प्रविभागतः।
कञ्चिदर्थमभिप्रेत्य सा संख्येत्युपधार्यताम्॥

इस वाक्य से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में 'दोषगुणमीमांसा' अर्थात् 'दार्शनिक विचार' इस अर्थमें 'संख्या' शब्दका प्रयोग होता था। इसी संख्या शब्दसे 'सांख्य' शब्द बना है। यही मत ठीक प्रतीत होता है।

सांख्यके प्रसिद्ध आचार्य—

सांख्यशास्त्रकी रचना कपिल महामुनिने की है। इन्हें 'आदि विद्वान्' भी कहते हैं। इन्होंने उपनिषदोंसे सांख्यके सिद्धान्तों का संग्रह करके उन्हें एक शास्त्रके रूपमें प्रस्तुत किया। कपिलने यह शास्त्र अपने शिष्य आसुरिको सिखाया। आसुरिने इसे अपने शिष्य पञ्चशिखको दिया। पञ्चशिखसे शिष्य-परम्परा द्वारा यह शास्त्र ईश्वरकृष्णको मिला। 'पञ्चशिख' और 'ईश्वरकृष्णके' बीचकी परम्पराका ठीक पता नहीं चलता। माठरवृत्तिमें भार्गव, उलूक, वाल्मीकि, हारीत, देवल आदि ऋषियोंके नाम मिलते हैं। युक्तिदीपिका'में

बाष्कलि, कैरात, पौरिक, ऋषभेश्वर, पञ्चाधिकरण, पतञ्जालि, वार्षगण्य कौण्डिन्य और मूकके नाम दिये हैं। इनके अतिरिक्त गर्ग और गौतमके नाम भी मिलते हैं।

ईश्वरकृष्ण—का कालनिर्णय—

'परमार्थ' नामके किसी चीन देशके पण्डितने सांख्यकारिकाका चीनी भाषामें अनुवाद किया था। यह कार्य ईसवी संवत् की छठवीं शताब्दीमें हुआ था। अतः ईश्वरकृष्णका छठवीं शताब्दीके पूर्व होना निश्चित है।

वार्षगण्य के शिष्य 'विन्ध्यवासी'ने 'हिरण्यसप्तति' नामके ग्रन्थकी रचना की थी। कुछ विद्वान् इस हिरण्यसप्ततिको ही सांख्यकारिका तथा विन्ध्यवासीको ही ईश्वरकृष्ण मानते हैं। वसुबन्धुने हिरण्यसप्तति का खण्डन अपनी परमार्थ-सप्ततिमें किया था। वसुबन्धुका आविर्भाव ईसवी संवत्के चतुर्थ शतकमें हुआ था। अतः कुछ विद्वानोंके मतानुसार ईश्वरकृष्णका काल चतुर्थ शतकके पूर्व तृतीय शतक है।

अन्य ऐतिहासिक इस मतको नहीं मानते। उनके अनुसार हिरण्यसप्तति तो सांख्यकारिका है परन्तु विन्ध्यवासी ईश्वरकृष्ण नहीं। उनका कथन है कि विन्ध्यवासी का असली नाम रुद्रिल था। विन्ध्यके जंगलोंमें रहनेके कारण उनका नाम विन्ध्यवासी पड़ गया था, वे अपने मतका समर्थन करनेके लिये तत्त्व-संग्रह से—

यदेव दधि तत् क्षीरं यत् क्षीरं तद्दधीति च।
वदता रुद्रिलेनैव ख्यापिता विन्ध्यवासिता॥

यह पद्य उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त 'शान्तरक्षित' और 'गुणरत्नने' भी अपने अपने ग्रन्थोंमें ईश्वरकृष्ण और विन्ध्यवासीका अलग अलग उल्लेख किया है! इन कारणोंसे विन्ध्यवासी और ईश्वरकृष्ण एक ही पुरुष नहीं माने जासकते। यह तो हुई ईश्वरकृष्ण और विन्ध्यवासीके अभिन्नताकी बात। ईश्वर-कृष्णके कालके विषयमें इन लोगोंका कथन है कि जैनोंके 'अनुयोगद्वारसूत्र' नामके ग्रन्थ में 'कणगसत्तरी' का उल्लेख मिलता है। यह 'कणगसत्तरी' 'हिर-ण्यसप्तति' या 'सांख्यकारिका' है। 'अनुयोगद्वारसूत्र' का काल ईसवी संवत्का प्रथम शतक है। अतः सांख्यकारिकाके कर्ता ईश्वरकृष्णका काल ईसवी प्रथम

शतकसे नीचे नहीं लाया जासकता। सम्भवतः उनका काल ई० पू० प्रथम शतक है।

सांख्यकारिकामें कारिकाओं—की संख्या—

सांख्यकारिकाकी मूल कारिकाओंकी संख्याके विषयमें विद्वानोंका मतभेद है—माठरवृत्तिके साथ प्रकाशित सांख्यकारिकामें ७३ कारिका हैं। उनमें से—

सप्तत्या किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य।' इस बहत्तरवीं कारिकाके पर्यालोचनसे प्रतीत होता है कि मूल कारिका ७० हैं, अन्य तीन कारिका प्रक्षिप्त हैं। जो लोग विन्ध्यवासी कृत 'हिरण्यसप्तति' को ही सांख्यकारिका मानते हैं उनके मतमें भी मूलकारिका ७० ही हैं। 'वाचस्पति मिश्र तथा 'नारायण तीर्थ कृत' टीकाओंके साथ प्रकाशित सांख्यकारिका में ७२ कारिका हैं। इससे प्रतीत होता है कि इनको मूल कारिकाओं की संख्या ७२ इष्ट है। चीन भाषाके अनुवादसे मालूम होता है कि मूलकारिका ७१ थी। गौडपादाचार्यं इस ग्रन्थकी व्याख्या केवल ६९ कारिका पर्यन्त की है। अतः उनके मतमें अन्तिम चार कारिका प्रक्षिप्त हैं। 'बालगङ्गधर' तिलक गौडपादभाष्य और माठरवृत्तिका अध्ययन करके कहते हैं सांख्यकारिकामें—

कारणमीश्वरमेके पुरुषं कालं परे स्वभावं वा।
प्रजाः कथं निर्गुणतो व्यक्तः कालः स्वभावश्च॥

यह कारिका भी थी। किसी कारणसे लुप्त होई है। उनके विचारसे यह कारिका ६२ वीं है। गौडपादके द्वारा व्याख्यात ६९ कारिकाओंमें इसे जोड देनेसे ७० कारिका हो जाती हैं। ये ही ७० मूल कारिका हैं, अन्य चार प्रक्षिप्त हैं।

वस्तुतः गौडपादभाष्यके साथ छपी ७२ कारिकाओंमेंसे प्रथम ७० कारिका मूल प्रतीत होती हैं, अन्य दो प्रक्षिप्त हैं। सत्तरवीं कारिका अत्यन्त सरल होनेके कारण गौडपादने उसपर भाष्य लिखना व्यर्थ समझ कर छोड़ दिया होगा।

षष्टितन्त्र क्या है?

गौडपादभाष्य सहित प्रकाशित सांख्यकारिका की 'सप्तयां किल येऽर्थाः' इत्यादि ७२ वीं कारिकासे ज्ञात होता है कि ईश्वरकृष्णने आख्यायिका और परवादको छोड़कर षष्टितन्त्रके सब सिद्धान्तोंको सांख्यकारिकाकी ७० कारि-

काओंमें दिखा दिया है। यह षष्टितन्त्र क्या है? कुछ लोगों का कहना है कि प्राचीनकालमें इस नामका कोई ग्रन्थ रहा होगा। माठराचार्यके विचारसे यह शास्त्रका नाम है, ग्रन्थका नहीं। उनका कहना है कि 'षष्टिपदार्था यस्मिन् शास्त्रे तन्त्र्यन्ते तत् षष्टितन्त्रम्'। वाचस्पति मिश्र और नारायण तीर्थ भी इसी मतका समर्थन करते हैं।

नारायण तीर्थ—का परिचय—

सांख्यकारिका पर सबसे अर्वाचीन टीका सांख्यचन्द्रिका है। इसके रचयिता हैं—विद्वत्प्रकाण्ड दार्शनिकप्रवर यतिवर नारायणतीर्थ। यह केवल सांख्यदर्शनके ही पण्डित न थे किन्तु सभी दर्शनोंमें इन्हें अच्छा पाण्डित्य था, क्योंकि सांख्य-कारिकाके समान भाषापरिच्छेद नामकी व्याख्या इन्होंने की है। जिसमें अपनी बुद्धि तथा प्रतिभाके बलसे कारिकावलीकी प्रसिद्धतम ठीका सिद्धान्तमुक्तावलीमें भी न कहे हुए कारिकाके व्याख्यायोग्य बहुतसे भागोंकी व्याख्या तथा मूलकी पूर्ति करते हुए स्वतन्त्रविचार भी ऐसे सुन्दर शैलीसे लिखे हैं जिससे यह अच्छे न्याय वैशेषिकदर्शनके भी पण्डित थे, यह मेरे संस्करणसे चौखम्बा संस्कृतसीरीज में छपी हुई न्यायचन्द्रिकासे स्पष्ट विदित होता है। इसीप्रकार उदयनाचार्यकृत न्यायकुसुमाञ्जलि—की व्याख्या तथा वेदान्तमें सिद्धान्त बिन्दुकी और योगसूत्र पर भी इनकी चन्द्रिकानामक व्याख्या है। जिससे दो सौ वर्षके पूर्व इनके ऐसा दार्शनिक विद्वान् नवीनोंमें कोई न था, यह कहना अनुचित न होगा क्योंकि उत्तर-प्रदेशवासी गोविन्द तीर्थ नामक दार्शनिक विद्वान्के शिष्य नारायण तीर्थ विक्रम-संवत १७१८ में थे, ऐसा ऐतिहासिकों का सिद्धान्त है। और यह ठीक भी प्रतीत होता है क्योंकि विद्याका ह्रास उदयनाचार्यके—

जन्मसंस्कारविद्यादेः शक्तेः स्वाध्यायकर्मणोः।
ह्रासदर्शनतो ह्रासः सम्प्रदायस्य मीयताम्॥'

इत्यादि उक्तिके अनुसार कालक्रमसे स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। इसीलिये सब दर्शनशास्त्रमें प्रवेश चाहनेवाले तथा उनका सार जाननेकी इच्छा रखनेवाले छात्रोंके उपकारार्थ सभी दर्शनों पर नारायणतीर्थने बहुत सरल व्याख्या की है, और उनका नाम चन्द्रिका रक्खा है, क्योंकि वे उन २ दर्शनों पर चन्द्रमाके चन्द्रिकाके समान प्रकाश डालती हैं।

सांख्य निरीश्वर हैं या सेश्वर ?

सांख्यशास्त्रको लोग सामान्यतः निरीश्वर मानते हैं। षड्दर्शनसमुच्चयके कर्ता हरिभद्र ने—

'सांख्या निरीश्वराः केचित् केचिदीश्वरदेवताः कह कर सांख्यशास्त्र निरीश्वर है या सेश्वर ?

उपनिषदोंमें सांख्यका जो रूप उपलब्ध होता है वह तो सेश्वर ही प्रतीत होता है। उपनिषदोंमें प्रकृति और पुरुषके ऊपर ब्रह्माकी सत्ता मानी गई है। पुरुषोंको ब्रह्मका अंशभूत स्वीकार किया गया है। महाभारत, भागवत, भगवद्गीता और मनुस्मृतिमें सेश्वर सांख्यका ही प्रतिपादन किया गया है। यह बात उन ग्रन्थोंके आलोचनसे स्पष्ट होती है। बुद्धने भी अरदाचार्यसे सेश्वर सांख्यका ही अध्ययन किया था। सांख्यकारिकामें प्रतिपादित ईश्वरकृष्णका सांख्य निरीश्वर है इसमें सन्देह नहीं। सांख्यप्रवचनभाष्यके कर्ता विज्ञानभिक्षुका सांख्य सेश्वर है। वे ईश्वर सत्ता मानते हैं।

साख्यको निरीश्वर माननेवाले आचार्यो द्वारा ईश्वरकी सत्ताका निषेध करनेके लिये दिए हुए तर्कोंका सारांश इस प्रकार है—

(१) नित्य परन्तु अपरिणामी ईश्वर जगत्का कारण नहीं हो सकता। यदि वह कारण है तो किस प्रकारका कारणहै—उपादान कारण या निमित्तकारण ? ईश्वर जगत्का उपादान कारण हो नहीं सकता। क्योंकि वह अपरिणामी है। कार्य तो उपादान कारणका रूपान्तर मात्र होता है।

(२) यदि ईश्वरको निमित्त कारण मानकर जगत्का कर्ता माना जाय तो यह भी असंगत होगा, क्योंकि वह तो निरीह है। जगतको उत्पन्न करनेमें उसका कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता। कोई भी चेतन व्यक्ति किसी कार्यमें निष्प्रयोजन प्रवृत्त नहीं होता। उन्मत्तोंकी प्रवृत्ति निष्प्रयोजन होती है। परन्तु आपका ईश्वर तो उन्मत्त नहीं है।

(३) यदि यह कहा जाय कि ईश्वरका कोई स्वार्थ न होने पर भी पुरुषोंके हितके लिए वह जगत्की रचनामें प्रवृत्त होता है, तो यह भी ठीक न होगा जगत्की उत्पत्तिके पूर्व शरीर न होनेसे पुरुषोंको किसी प्रकारका दुःख ही नहीं है। अतः पुरुषोंके हितके लिये जगत्की रचनामें प्रवृत्तिकी बात ही नहीं उठती।

इसके अतिरिक्त यदि ईश्वर पुरुषोंके हितके लिए जगत्की रचना करता है तो वह केवल सुखमय होना चाहिये, संसार तो दुःखपूर्ण है।

इन सब कारणोंसे यह कहना पड़ता है कि ईश्वर कोई पदार्थ नहीं है। प्रकृति ही जगत्का कारण है। वह जड़ होने पर भी पुरुषके हितके लिये स्वयं प्रवृत्त होती है। जिस प्रकार गायका खाया हुआ घास दूधमें परिणित होकर बछड़ेके पोषणके लिये स्वयं प्रवृत्त होता है।

ईश्वरकी सत्ता माननेवाले सांख्याचार्य प्रकृति और पुरुषके संयोगके लिए ईश्वर की आवश्यकता मानते हैं। उनका कहना है कि पुरुष निरीह और प्रकृति जड़ है। उन दोनोंका मिलन स्वयं हो नहीं सकता। अतः ईश्वरको मानना पड़ता है। वह साक्षिमात्र है। उसके सन्निधान मात्रसे प्रकृति पुरुषसे मिलकर जगत्की रचनामें प्रवृत्त होती है। इसका उदाहरण चुम्बक है। उसके समीप आते ही लोहेमें गति उत्पन्न हो जाती है।

सांख्य और योग—का परस्पर सम्बन्ध—

सांख्य और योग परस्पर सर्वथा भिन्न नहीं हैं। योगमें भी सांख्यमें प्रतिपादित तत्त्व माने गए हैं। भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने भी कहा है—

'सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।'

सांख्यमें प्रतिपादित पञ्चविंशति तत्त्व योगमें भी माने गए हैं। प्रत्यक्षादि तीन प्रमाण दोनों शास्त्रोंको इष्ट हैं। प्रकृति और पुरुषका संयोग संसार है और उनका वियोग मोक्ष है—यह तत्त्व भी दोनों शास्त्रोंमें समान रूपसे स्वीकार किया गया है। सांख्य ज्ञानप्रधान है और योग क्रियाप्रधान। सांख्यमें तत्त्वमीमांसा है, योगमें चित्तवृत्तिके निरोधके उपायोंका वर्णन किया गया है। मोक्षप्राप्तिके साधनके विषयमें दोनोंमें कुछ अन्तर है। सांख्य पञ्चविंशति तत्त्वोंके ज्ञानको मोक्षका कारण मानता है, और योग चित्तवृत्तिके निरोधकी पराकाष्ठाको पुरुषके स्वरूपमें अवस्थानका कारण बतलाता है। योगमें ईश्वर नामका छब्बीसवां तत्त्व भी माना गया है यह भी योगकी विशेषता है। चार्वाकको छोड़कर प्रायः सभी शास्त्रोंमें शरीर और चित्तकी शुद्धिके लिये यौगिक क्रियायें प्रशस्त मानी गई हैं।

काशी
सं० २०१०

कान्तानाथ शास्त्री तेलंग

सांख्यकारिका-चन्द्रिका--विषयसूची

—*:*—

॥ श्रीः ॥

साङ्ख्यकारिका

नारायणकृत 'चन्द्रिका' टीकासहित 'हिन्दी' व्याख्योपेता

—:*:—

चन्द्रिका

श्रीरामगोविन्दसुतीर्थपादकृपाविशेषादुपलभ्य बोधम् ।
श्रीवासुदेवादधिगत्य सर्वशास्त्राणि वक्तुं किमपि स्पृहा नः ॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव नत्वाऽऽचार्यान् गुरूंस्तथा ।
नारायणः साङ्ख्यमूले तनुते साङ्ख्यचन्द्रिकाम् ॥ २ ॥

तदिदं शास्त्रं चतुर्व्यूहम्—हेयं हेयसाधनं हानं हानसाधनं चेति, मुमुक्षुजिज्ञासितत्वात् । तत्र हेयं सर्वप्रतिकूलवेदनीयतया दुःखम्, हेयहेतुः प्रकृतपुरुषयोरविवेकः, हानं दुःखस्यात्यन्तनिवृत्तिः परमपुमर्थः, हानहेतुः प्रकृतिपुरुषविवेकद्वारा शास्त्रम्, अतोऽत्र परमपुमर्थस्य स्वत एवेष्टत्वेन तदुपाये शास्त्रे प्रेक्षावतामिष्टसाधनताज्ञानादवश्यं जिज्ञासा भवतीत्याह—

(१) दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥ १ ॥

दुःखत्रयेत्यादि । दुःखत्रयमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च । तत्रात्मानं शरीरमन्तःकरणं चाधिकृत्य यज्जायते तदाध्यात्मिकं दुःखं, वातपित्तादि(२) प्रकोपजन्यं कामादि (३) जन्यं च । (४)तत्र भूतानि प्राणिनोऽधिकृत्य यज्जायते तदाधिभौतिकं व्याघ्रचौराद्युत्थम् । एवं देवाग्न्यादीनाधिकृत्य यज्जायते तदाधिदैविकं दाहशीतादिकृतं यक्षराक्षसविनायकग्रहाद्यावेशनिबन्धनं च । यद्यपि सर्वमेव

---

(१) यद्यपि दुःखममङ्गलं तथापि तत्परिहारार्थत्वेन तदपघातो मङ्गलमेवेति दुःखशब्दोपादानं ग्रन्थादौ न दोषायेति वाचस्पतिमिश्राः । (२) आदिना श्लेष्मग्रहणं तेषां प्रकोपो वैषम्यं तेन जन्यमेतच्च शारीरं दुःखम् । (३) आदिना क्रोधलोभमोहभयेर्ष्याविषादविषयादर्शनानां ग्रहणं तैर्जन्यं मानसं दुःखमित्यर्थः । (४) तथेत्यर्थः ।

दुःखं मानसमेव, तथापि मनोमात्रजन्यत्वाजन्यत्वाभ्यां मानसत्वामानसत्त्वविभागः। तस्य=दुःखत्रयस्य, अभिघातात्=असह्यसम्बन्धात्, तदपघातके=प्रकृतिपुरुषविवेकद्वारा दुःखोच्छेदके, हेतौ=वक्ष्यमाणशास्त्रे, प्रेक्षावतां जिज्ञासा भवत्येवेत्यर्थः।

यद्यपि वर्तमानं स्थूलं दुःखं द्वितीयक्षणे स्वयमेव नङ्क्ष्यति अतीतं तु नष्टमेव; तथाप्यानागतसूक्ष्मदुःखनिवृत्तौ तात्पर्यम्। अत्र यद्यपि सत्कार्यवादे न ध्वंसप्रागभावरूपाभावः (१), तथापि निवृत्तिरत्र सूक्ष्मरूपस्यातीतावस्थत्वमेव (२) स्थूलस्वरूपाप्राप्तियोग्यत्वं वा। न चानागते मानाभावः, यावच्चित्तकालावस्थायिकार्यजननशक्त्या यावच्चित्तसत्त्वमनागतदुःखानुमानात् (३)।

ननु तत्र शरीरदुःखस्य रसायनादिसेवनात्, मानसस्य मनोज्ञस्त्रीपानभोजनादितः, आधिभौतिकस्य नीतिशास्त्राभ्यासनिरत्ययस्थानसेवनादितः, आधिदैविकस्य मणिमन्त्रौषधादितो दृष्टोपायादेवोच्छेदो भविष्यतीत्याशयेनाशङ्कते दृष्टे सेति। दृष्टे=प्रसिद्धौषधादिविषय एव, सा=जिज्ञासा, अपार्था=अन्यथासिद्धाऽस्त्विति (४) चेदित्यर्थः। निषेधति नेति। एकान्तत्वं दुखोच्छेदस्यावश्यकत्वम्, अत्यन्तत्वम्। दुःखस्य पुनरनुत्पादस्तदुभयस्य दृष्टोपायादभावात् ॥ १ ॥

हिन्दी—ब्रह्माजी के पुत्र भगवदवतार कपिल महामुनिने अवतारलेकर सारे संसारके जीवोंको अज्ञानरूप अन्धकारमें डूबा हुआ देखकर उनपर दया करते हुए पचीस तत्त्वोंके ज्ञानसे भरे हुए जिस सांख्यशास्त्र का अपने प्रधान शिष्य आसुरि मुनिको उपदेश किया था, आचार्य,—परम्परासे प्राप्त उसी सांख्यशास्त्र का सार

---

(१) 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत' इति स्मृतेर्दुःखध्वंसादेरसम्भव इति आक्षेपार्थः। (२) नन्वतीतावस्थस्यापि कदाचित् प्रादुर्भावः स्यादित्याशङ्क्य पक्षान्तरमाह। (३) चित्तसत्त्वमनागतदुःखजनकं भवितुमर्हति यावच्चित्तावस्थायिकार्यजननशक्तिमत्त्वात् वह्निवत्, अग्रे दुःखं भविष्यति जनकादृष्टत्वात् पूर्वादृष्टवदिति वाऽनुयानसम्भवादित्यर्थः। (४) 'अक्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत। इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्।' इत्याभाणकरीत्यादृष्टोपायेनैव त्रिविधदुःखनिवृत्तिसम्भवे शास्त्रजिज्ञासा व्यर्थेत्याशङ्कार्थः। (५) 'यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्। अभिलाषोपनीतं च तत् सुखं स्वःपदास्पदम्॥' इत्यादिप्रमाणात्। अग्रस्तत्वात्='अपाम सोममममृता अभूमेति' श्रुतेरक्षयित्वाच्चेत्यर्थः।

ईश्वरकृष्ण नामके महर्षिने सत्तर ७० कारिकाओंमें संग्रह कर शिष्योंको इस तरह पढ़ाया कि हे शिष्यों! इस संसारमें प्राणिमात्रको*आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकारके दुःखोंका प्रतिकूल होनेके कारण असह्य सम्बन्ध होनेसे प्रकृतिपुरुष–विवेकद्वारा उक्त दुःखोंके नाशक सांख्यशास्त्र ज्ञान रूप उपायकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) बुद्धिमान् पुरुषोंको होती है।

शिष्यों का प्रश्न—पूर्वोक्त दुःखत्रयका उच्छेद रसायनादि औषध-सेवनरूप दृष्ट (लौकिक) उपायोंसे हो सकता है इसलिये शास्त्रज्ञानरूप अलौकिक उपायमें जिज्ञासा व्यर्थ है ?

उत्तर—दृष्टोपायोंसे दुःखोच्छेद अवश्य होता ही है यह नियम न होनेसे तथा होनेपर भी फिर दुःख पैदा होते हैं, इस कारण ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक दुःखोच्छेद दृष्ट उपायोंसे नहीं हो सकता, और सांख्यशास्त्रके ज्ञानसे उत्पन्न तत्त्वज्ञान रूप अलौकिक उपायसे ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक दुःखका उच्छेद हो सकता है अतः सांख्यशास्त्रमें मुमुक्षु पुरुषोंको जिज्ञासा होना युक्त है ॥ १ ॥

ननु स्वर्गस्य दुःखासम्भिन्नत्वा (५)दग्रस्तत्वाच्च तद्धेतुज्योतिष्टोमादिक एव जिज्ञासा भविष्यति, तत्राह—

दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः ।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥ २ ॥

दृष्टवदिति । गुरुमुखादनुश्रूयते इत्यनुश्रवो वेदः कर्मकाण्डरूपस्तेन प्रोक्तो ज्योतिष्टोमादिरानुश्रविक उपायो, दृष्टवत् = औषधादिवत् । अत्र हेतुमाह—स

---

*शरीर तथा मनमें जो दुःख होते हैं वे दो प्रकारके (शारीरिक तथा मानसिक) आध्यात्मिक दुःख कहलाते हैं, १ इनमेंसे वातपित्तकफादिकोंके वैषम्यसे जो ज्वरादि होते हैं, ये शारीरिक दुःख कहलाते हैं, २ तथा काम क्रोध लोभ मोह भय ईर्ष्या तथा अभीष्ट विषयों की अप्राप्तिसे होनेवाले दुःख मानसिक कहे जाते हैं। अधिभौतिक दुःख वे हैं जो शेर, चोर इत्यादि भौतिक प्राणियोंसे पैदा होते हैं। इसी तरह अग्नि–वायु इत्यादि देवताओंसे होनेवाली दाहादि व्याधियोंको आधिदैविक कहते हैं, और भूत प्रेत पिशाचादि बाधाको भी आधिदैविक दुःखही कहते हैं।

हीति । हि=यतः । अविशुद्धिरङ्गवैगुण्यं 'न हिंस्यादिति' शास्त्रनिषिद्धहिंसा च, (१) अन्ततो वृक्षपत्रादिच्छेदानामग्निसान्निध्यात् क्षुद्रजन्तुनाशादेश्च सम्भवात्, अतो दुःखहेतुरेव । क्षयेति । तत्कर्मणः फलस्य क्षयित्वेन नात्यन्तदुःखोच्छेदकत्वम्, क्षयानन्तरं दुखोत्पत्तेरित्यर्थः । अतिशयेति । तत्राप्यधिकसुखिदर्शनात्, ईर्ष्यामर्षाभ्यां स्वीयो दुःखोत्कर्ष एवातिशय इत्यर्थः । (२) ननु विधिसंस्पृष्टस्य निषेधविषयतया विरुद्धत्वात्, अन्यथा विधिनिषेधाधीनप्रवृत्तिसमावेशदोषप्रसङ्गादाहवनीयविधिः (३) पदहोममिव 'न हिंस्या'दित्यादिनिषेधोऽग्निषोमीयं पशुमालभेते'त्यादिविधिविषयां यागीयहिंसां परिहृत्य प्रवर्त्तत इति यागीयातिरिक्तहिंसैव पापं न यागीयेवेति चेत् । न, हिंसायां विध्यधीनेष्टसाधनत्वस्य निषेधाधीनानिष्ठसाधनत्वस्य च समावेशसम्भवात् पशुवधप्रयुक्तस्याल्पानिष्टस्य वित्तव्ययायासादिसाध्यदुःखस्येवाभ्युपगमेन क्रतुसाध्यमहाफलार्थितया प्रवृत्तेरुपपन्नत्वेन विधिनिषेधाधीनप्रवृत्तिनिवृत्तिसमावेशदोषाणामनवकाशात्, पापमेव हिंसिधातुपदवाच्या यागीयापि हिंसेति तद्धटितज्योतिष्टोमादिकमविशुद्धमेव, (४) अत एवोक्तं भारते पितापुत्रसंवादे—

तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं जन्मजन्मान्तरेष्वपि ।
त्रयीधर्ममधर्माढ्यं न सम्यक् प्रतिभाति मे ।। इति ।।

अधिकमस्मत्कृतयोगसूत्रव्याख्यानेऽनुसन्धेयम् । तद्विपरीतः श्रेयान्=दृष्टानुश्रविकाद्भिन्न उपायः शास्त्रैकगम्यात्मसाक्षात्कारः श्रेयान्, ऐकान्तात्यन्तिकदुःखोच्छेदक्षमः । स कस्माद्भवति ? तदाह व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानादिति । व्यक्तं भूतादि, अव्यक्तं प्रधानम्, ज्ञः पुरुषः, एषां विविच्य ज्ञानाद्भवतीत्यर्थः । अयमभिप्रायः—आत्मानात्मविवेकसाक्षात्कारात् कर्तृत्वाद्यखिलाभिमाननिवृत्त्या तत्कार्यरागद्वेषधर्माधर्माद्यनुत्पादात् पूर्वोत्पन्नकर्मणां (५) चाविद्यारागादिसहकार्युच्छेदरूपदाहेन विपाकानारम्भकत्वात् प्रारब्धसमाप्त्यनन्तरं पुनर्जन्माभावेन त्रिविध-

---

(१) अन्तत इति ।,कर्मकर्तृसाधनरूपाङ्गसाद्गुण्यसम्पादने पिष्टपश्वादिकरणेप्यन्ततोऽवश्यं वृक्षपत्रच्छेदनाविशुद्धिसम्भवादित्यर्थः । (२) मीमांसकप्रश्नः । (३) आहवनीये जुहोतीति वाक्योक्तो विधिः पदे जुहोतीति दशमाध्यायोक्तं विशेषविधिं परिहृत्य यथाऽऽहवनीयहोमविधिस्तथेत्यर्थः । (४) यागीयहिंसायाः पापत्वादेव । (५) सञ्चितकर्मणाम् । रागादीति । द्वेषमोहाभिनिवेशा आदिपदग्राह्याः ।

दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपो (१) मोक्षो भवतीति तादृशसाक्षात्कारहेतौ मननाख्य-विचाररूपे शास्त्रे प्रेक्षावतां जिज्ञासा भवत्येवेति ॥ २ ॥

हिंदी--इसी तरह सुख विशेषरूप स्वर्गादि फलोंको देनेवाले ज्योतिष्टोमयागादिरूप वेदोक्त कर्म भी, पशुहिंसादिकोंसे भरे होनेके कारण अशुद्ध[1], तथा कालान्तरमें फलके विनाशी होनेसे क्षयी[2], एवं उक्त कर्मोंके फलोंमें न्यूनाधिक भाव होनेसे ईर्ष्यादिक हो सकते हैं इसलिये अतिशय[3], ऐसे तीन दोष होनेसे, पूर्वोक्त दृष्ट उपायों के ही हैं, क्योंकि उनसे भी ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक दुःखोच्छेद नहीं हो सकता, इसलिये प्रत्यक्ष तथा वेदोक्त उपायोंसे भिन्न सांख्यशास्त्रमात्रसे होने वाला तत्त्वज्ञान रूप उपाय ही ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक दुःखोच्छेदमें समर्थ होनेसे श्रेयस्कर है, जो व्यक्त (महदादिकार्य) अव्यक्त (प्रकृति) तथा पुरुष (आत्मा) इन तीन प्रकारके पदार्थोंके ज्ञानसे होता है ॥ २ ॥

व्यक्ताव्यक्तज्ञानां स्वरूपं दर्शयितुं लक्षणमाह—

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥ ३ ॥

मूलप्रकृतिरिति । मूलप्रकृतिः = सर्वजनिका प्रकृतिरजन्या, तथा चाजन्यत्वे सति जनकत्वं प्रकृतित्वम् (२) । अव्यक्तमुक्त्वा व्यक्तं द्विविधमाह—महदाद्या इति । महँत्तत्त्वाहङ्कारपञ्चतन्मात्राणि प्रकृतिविकृतयः । (३) तत्त्वविभाजकोपा-ध्यवच्छिन्नजनकत्वे सति जन्या इत्यर्थः । षोडशक इति । एकादशेन्द्रियाणि पञ्चा-काशादीनि महाभूतानि च विकार इति । (४) तत्त्वविभाजकोपाध्यवच्छिन्नाजन-कत्वे सति जन्य इत्यर्थः । पुरुषस्तुत्सर्वभोक्ता न प्रकृतिर्न विकृतिः ।

विपाकानारम्भकत्वात् = जात्यायुर्भोगरूपकालान्तरीयफलाजनकत्वात् । (१) अत-एवोक्तं गौतममहर्षिणा—'दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्त-रापायादपवर्गं' इति । (२) अत्र महदादावहङ्कारादिजनकेऽतिव्याप्तिवारणायाजन्यत्वे सतीति विशेषणम्, तन्मात्रोक्तौ पुरुषेऽतिप्रसङ्गवारणाय विशेष्यपदञ्चानुसन्धेयम् । (३) तत्त्वेति । तत्त्वविभाजकोपाधिर्मूतत्वादिस्तदवच्छिन्नषोडशकजनकत्वे सति कार्यत्वं प्रकृतिविकृतित्वम् इत्यर्थः । मूलप्रकृतावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यम्, षोडशके तद्वारणाय विशेषणं च बोध्यम् । (४) तत्त्वान्तरानुपादानत्वे सति

अजनकत्वे सत्यजन्य इत्यर्थः। आद्यविशेषणेन प्रकृतिनिरासः। द्वितीयेनातीन्द्रिय (१)सामान्यादिनिरासः। तदेवं पञ्चविंशतितत्त्वान्युक्तानि। सेश्वरसांख्यनये तु पुरुषपदेनैवेश्वरस्यापि ग्रहणं, मायापदेन चेश्वरसङ्कल्प एवोच्यते जीवादृष्टं वा, अविद्याशब्देन च जीवभ्रम एवोच्यते नान्यत्, अतो न तदकथनकृता न्यूनतेति सङ्क्षेपः।३।

हिंदी—प्रश्न—सांख्यमें मुख्य कितने पदार्थ हैं?

उत्तर—सांख्यमतमें व्यक्तादि तीन प्रकारके पदार्थोंका (जिनमें पचीस तत्त्व सांख्य मत के अन्तर्गत हैं) स्वरूप मुख्यतः चार प्रकारसे विभक्त है—१ केवल प्रकृति रूप, २ प्रकृति विकृति उभय रूप, ३ केवल विकृति रूप, ४ अनुभय रूप। जिनमेंसे सारे जगत् कार्यको पैदा करनेवाली किसी दूसरे कारणसे न पैदा होनेवाली प्रकृति जिसे 'अव्यक्त' कहते हैं केवल प्रकृति रूप पदार्थ है। दूसरे व्यक्त पदार्थका नौ हिस्सोंमें विभाग किया है। १—जिसमेंसे मह[१]त्तत्व अहङ्कार[२] पञ्चतन्मा[५]त्रा ये सात प्रकृति विकृति (कारण कार्य उभय रूप) पदार्थ हैं। २—और एकादश इन्द्रिय तथा पञ्चमहाभूत ऐसे सोलह केवल विकृति (केवल कार्य रूप) पदार्थ हैं। चौथा 'ज्ञ' पुरुष अर्थात् आत्मा अनुभय रूप (न कारण न कार्य) है, ऐसे तीन पदार्थ या पचीस तत्त्व सांख्यमतमें ४ भागोंमें रक्खे गये हैं॥ ३॥

तत्त्वान्युक्तानि, तेषां सिद्धिः प्रमाणेन भवति, न चैकप्रमाणेन सर्वेषां तत्त्वानां सिद्धिः सम्भवति, तथा च प्रमाणवहुत्वमुचितं, तत्र कानि प्रमाणानि कियन्ति चेत्यत आह—

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि॥ ४॥

दृष्टमिति। दृष्टं = प्रत्यक्षम्। अनुमानम् = अनुमितिकरणं लिङ्गपरामर्शः। आप्तवचनं = शब्दप्रमाणम्, उक्तं कपिलेन भगवतेत्यर्थः। कुतः? सर्वप्रमाणसिद्ध-

---

केवलविकृतित्वमित्यर्थः। प्रकृतिविकृतिरूपेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेषणं, पुरुषे तद्वारणाय विशेष्यं चात्र द्रष्टव्यम्। (१) अतीन्द्रियं महत्तत्वादि तन्निष्ठसामान्यस्य जन्यत्वमेव। महत्तत्वस्य यथा जन्यत्वं तथा तस्यापि सांख्यमते जन्यत्वमेव। नैयायिकमते यथा जातिर्नित्या तथा साङ्ख्यमते न, किन्तु द्विविधाः पदार्थाः सामान्या विशेषाश्च यथा मृत्तिका सामान्या घटश्च विशेषः॥

त्वात्—सर्वैः प्रमाणैः प्रमातृभिः पतञ्जलिप्रभृतिभिः सिद्धत्वात् प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानीति स्वीकृतत्वात्(१), उपमानादिकं तु न सर्वप्रमाणसिद्धमिति भावः। यद्यपि वैशेषिकैः शब्दो नाभ्युपेयते तथापि ते न प्रमातार इति भावः। एवमन्येऽपि प्रत्यक्षाद्यपलपन्तो न प्रमातार इति बोध्यम् (२)। उपमानस्यान्तर्भावो यथा—गवयपदं गवयवाचकम् असति वृत्त्यन्तरे तत्र प्रयुज्यमानत्वादिति(३)। एवमर्थापत्तेरपि, यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इत्यत्रायं रात्रिभोजी दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनत्वादिति (४)। अनुपलब्धिस्तु (५) प्रत्यक्षसहकारिणी न स्वतो मानम्। ऐतिह्यसम्भवावपि शब्द एव (६)। चेष्टात्व (७) नुमान एवेति सङ्क्षेपः। प्रमेयेति। हि यतः प्रमाणादेव प्रमेयाणां सिद्धिरतः प्रमाणं त्रिविधमिष्टमित्यर्थः ॥ ४ ॥

हिंदी—प्रश्न—विना प्रमाण के उक्त पदार्थ क्यों माने जांय ?

उत्तर—परन्तु इन चार प्रकारके प्रमेय (जानने योग्य) पदार्थोंकी सिद्धि विना प्रमाणोंके नहीं हो सकती, इसीलिये प्रत्यक्ष[1] अनुमान[2] तथा आप्तवचन[3] ऐसे तीन ही प्रमाण सांख्योंने इसलिये माने हैं कि नैयायिक इत्यादिकोंसे माने हुए उपमानादि रूप बाकी सब प्रमाणोंका इन्हीं तीन प्रमाणोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। पूर्वोक्त प्रमेय पदार्थों की सिद्धि प्रमाणों ही से होने के कारण प्रमाणों का निरूपण करना आवश्यक है ॥ ४ ॥

---

(१) सर्वेषामुपमानादीनामन्यतान्त्रिकैः परिकल्पितानां प्रमाणानामेष्वेवान्तर्भावादित्यन्ये। (२) अत्र शब्दस्यानुमानविधया प्रामाण्याङ्गीकाराद्वैशेषिकाणामप्रमातृत्वोक्तिश्चन्द्रिकाकारस्य प्रमाद एव, तथाऽन्ततो लोकायतिकैरपि प्रत्यक्षस्य प्रामाण्याभ्युपगमात्तदनङ्गीकर्तृणामप्यप्रमातृत्वोक्तिरसङ्गतैवेति विभावनीयम्।

(३) अनेनानुमानेन उपमानान्तर्भावः प्रदर्शितः। (४) यः दिवा अभुञ्जानत्वे सति रात्रिभोजी न भवति नासौ पीनो यथा उपवासी। अनेन व्यतिरेक्यनुमानेऽर्थापत्त्यन्तर्भावः सूचितः। (५) प्रत्यक्षेति। इन्द्रियेणाभावप्रत्यक्षेऽनुपलब्धिः सहकारिणीत्यर्थः। ऐतिह्येति। अदृष्टप्रवक्तृकं प्रवादपारम्पर्यमात्रमिति होचुर्वृद्धा इत्यतिह्यं यथेह वटे यक्षः प्रतिवसतीति। सम्भवस्तु यथा खार्यां द्रोणाढकप्रस्थाद्यवगमः। (६) अन्तर्भवत इतिशेषः। (७) हिताहितप्राप्तिपरिहारार्था क्रिया चेष्टा, तयाऽऽह्वानाद्यनुमीयत इत्यनुमाने तस्या अन्तर्भावो बोध्यः।

प्रमाणानां लक्षणान्याह—

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टं त्रिविधमनुमानमाख्यातम् ।
तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकमाप्तश्रुतिराप्तवचनं तु ॥ ५ ॥

प्रतिविषयेति । प्रतिविषयो नियतविषयोऽध्यवसीयते निश्चीयतेऽनेनेति प्रतिविषयाध्यवसाय इन्द्रियम् (१) । चक्षुरादीनां रूपादिविषयकत्वनियमान्नियतविषयकत्वम् । ननु कारणेन मेघादिना कार्यस्य वृष्ट्यादेर्ज्ञानं कार्येण धूमादिना कारणस्य वह्न्यादेर्ज्ञानं न प्रत्यक्षम्, तथा च ते (२) केन प्रमाणेन जनयितव्ये तत्राह—त्रिविधमिति । तथा चानुमान एव तयोः प्रवेशः । तथा च गौतमसूत्रम्—'अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतो दृष्टं चे'ति । (३)तत्पूर्वकं=व्याप्त्यादिप्रत्यक्षपूर्वकम् । पूर्ववत्=कारणेन कार्यानुमानम्(४) । शेषवत्=कार्येण कारणानुमानम् । सामान्यतो दृष्टं=कार्यकारणान्यलिङ्गकम्, यथा वायूपनीतचम्पकभागो रूपादिमान् गन्धादिति । त्रितयसाधारणमनुमानलक्षणमाह—तल्लिङ्गेति । तस्य साध्यस्य लिङ्गं (५) व्याप्यम्, लिङ्गं यत्र विद्यते स लिङ्गी व्याप्यवान् पक्षः, पूर्वं कारणं यस्य प्रत्यक्षस्य तत् तथा, तथा च साध्यव्याप्यविशिष्टं (६) पक्षप्रत्यक्षं—वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्याद्याकारः परामर्शोऽनुमानम्, अनुमितिकरणत्वादित्यर्थः । शब्दलक्षणं वक्तुमाह—आप्तवचनमिति । आप्तं च तद्वचनं चेत्याप्तवचनम्, आकाङ्क्षाऽऽसत्तियोग्यतातात्पर्यवत् पदकदम्बकम्, लक्ष्यनिर्देशोऽयम्, आप्तश्रुतिरिति लक्षणम्, प्रकृतवाक्यार्थगोचरयथार्थज्ञानवानाप्तः, श्रूयत इति श्रुतिर्वाक्यम्, तथा चाप्तोक्तवाक्यत्वमिति लक्षणं प्राप्तम्, शुकबालकादियथार्थवाक्ये तु सेश्वरसाङ्ख्यमते ईश्वर एवाप्तः, अन्यमते तु (७) तन्न प्रमाणमिति सङ्क्षेपः ।

---

(१) प्रत्यक्षप्रमाणमित्यर्थः । नियतविषयनिश्चायकत्वमिन्द्रियाणां कथमित्याह चक्षुरादीनामिति । एतेनेन्द्रियाणां प्रत्यक्षप्रमाणत्वन्तत्फलन्तु चैतन्यप्रतिबिम्बविशिष्टा बुद्धिवृत्तिः प्रमा तत्करणमिन्द्रियं प्रमाणमिति भावः । (२) ज्ञाने ।

(३) गौतमसूत्रार्थमाह—तत्पूर्वकमिति । (४) यथा मेघोन्नत्या कारणेन कार्यवृष्टेरनुमानम् । कार्येण धूमेन कारणस्य वह्नेरनुमानं शेषवदनुमानम् । (५) यथा वह्न्यादेर्धूमादि । (६) साध्यव्याप्याभ्यां विशिष्टम् । साध्यव्याप्यविशिष्टपक्षप्रत्यक्षाकारमेव प्रदर्शयति वह्नीत्यादिना । (७) आप्तवचनम् ।

वस्तुतस्तु तन्मते (१) इन्द्रियादिकं न प्रमाणं किन्त्विन्द्रियादिजन्या वृत्तिरेव, तथाहि अविसंवादिज्ञान (२) मनधिगततत्त्वबोधो वा प्रमा, तत्करणं तस्या अयोगव्यवच्छेदेन (३) सम्बन्धि तदेव प्रमाणसामान्यलक्षणम् । तत्रेन्द्रियसञ्चारमार्गेण वाह्यवस्तुसम्बन्धाच्चित्तस्येन्द्रियसन्निकृष्टार्थविशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं, यथा घटोऽयमित्यादि । गृहीतव्याप्तिकेन हेतुना साध्यवति पक्षे ज्ञायमानेन साध्यविषया वृत्ति (४) रनुमानं—यथा पर्वतो वह्निमानित्यादि । आप्तोक्तेन शब्देन श्रोतुस्तत्तदर्थाकारा वृत्तिरागमः, यथा 'स्वर्गकामो यजेतेति' वाक्यात् स्वर्गकामनावता यागः कार्यं इति (५) । अत्र सर्वत्र (६) पौरुषो बोधः फलं येन जानामीत्यादि व्यवहरति जन इत्यास्तां विस्तरः । कारिकार्थस्तु (७) प्रतिविषयोऽध्यवसीयते निश्चीयते विषयीक्रियतेऽनेनेतीन्द्रियजन्यवृत्तिरूपं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । लिङ्गलिङ्गिपूर्वकं स्व (८) ज्ञानद्वारा हेतुपक्षजन्यसाध्यज्ञानमनुमानम् । आप्तश्रुतिः, आप्तशब्देन शाब्दो बोध इति ॥ ५ ॥

हिंदी—प्रश्न—उक्त प्रमाणों का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—उक्त तीन प्रमाणोंमें से विषयोंमें सन्निकृष्ट (सम्बद्ध) इन्द्रियोंसे पैदा हुये बुद्धिके व्यापारको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, और इस व्यापारसे चैतन्य शक्तिका बुद्धिमें प्रतिविम्ब पड़ना ही उसका फल है, जिसे प्रमा या पौरुषेयबोध ऐसा सांख्यमतावलम्बी कहते हैं। अथवा जिससे नियमित विषयका निश्चय होता है ऐसे इन्द्रिय या इन्द्रियसन्निकर्षको ही प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। और इसका फल है चेतनमें प्रतिविम्वित बुद्धिवृत्ति। अनुमान प्रमाण वह है जो हेतु तथा साध्यके व्याप्ति ज्ञान, तथा लिङ्गिपदकी आवृत्तिसे हेतुका पक्षमें रहनेका ज्ञान अर्थात् व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मता ज्ञानात्मक परामर्श ही को अनुमान कहते हैं, जिससे पर्वतमें वह्निज्ञान रूप अनुमिति फल होता है। इसके १ पूर्ववत् (कारणसे कार्यका अनुमान) २ शेषवत् (कार्यसे कारणका अनुमान) ३ सामान्यतोदृष्ट

---

(१) निरीश्वरसाङ्ख्यमते । (२) यथार्थज्ञानम् । अविसंवादिस्मृतिज्ञानमादाय तत्करणस्य प्रमाणान्तरत्वापत्तिवारणायाहानधिगततत्त्वबोधो वेति । (३) अवश्यसम्बन्धेन । (४) बुद्धिवृत्तिरित्यर्थः । एवमग्रेऽपि । (५) इति बुद्धिवृत्तिर्जायत इति शेषः । (६) वृत्तिप्रमाणपक्षे पौरुषो बोधःबुद्धिवृत्त्यभिव्यक्तं चैतन्यमित्यर्थः । (७) वृत्तिप्रमाणपक्षे इत्यादिः । (८) व्याप्तिः स्वशब्दार्थः ।

(कार्य तथा कारणसे भिन्न लिङ्गसे अनुमान) ऐसे तीन भेद हैं। आप्तवचनरूप शब्द प्रमाणका लक्षण है अर्थात्—यथार्थ वाक्यसे पैदा हुए वाक्यार्थज्ञानको प्रमाण-शब्द कहते हैं। इस लक्षणसे वेद तथा तन्मूलकश्रुति–स्मृति–इतिहास–पुराण इत्यादि वाक्यजन्य ज्ञानों का भी युक्त होने से शब्द प्रमाणमें संग्रह हो जाता है, और अयुक्त होने से बौद्धादि दर्शनोंके वाक्य ज्ञानका संग्रह नहीं होता है ॥५॥

इदानीं प्रमाणत्रयविषयानाह—

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात् ।
तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात् सिद्धम् ॥ ६ ॥

सामान्यतस्त्विति। सामान्यत इति षष्ठचन्तात् तसिः, तथा चेन्द्रिययोग्यस्य सर्वस्याऽपेक्षितस्याऽनपेक्षितस्य च दृष्टात प्रत्यक्षादेव सिद्धिः, तेन पृथिव्यादीनां प्रत्यक्षादेव सिद्धिरिति भावः (१)। अतीन्द्रियाणां प्रकृत्यादीनांसिद्धिरनुमानात्, यथा महत्तत्त्वं सकारणकं कार्यत्वाद् घटवदिति, कारणान्तरबाधात् (२) प्रकृतिसिद्धिः। न च पुरुष एव जनकोऽस्तु, तस्यापरिणामित्वेनाजनकत्वात्। तस्मादपि (३) परोक्षमतीन्द्रियं यागस्वर्गसाधनत्वादि आप्तागमात् शब्दप्रमाणाणा (४) दित्यर्थः ॥ ६ ॥

हिंदी—प्रश्न—उक्त तीनों प्रमाणोंके प्रमेय कौनसे हैं ?

उत्तर—इन्द्रियोंसे ग्रहण करने योग्य सभी पृथिव्यादि पदार्थोंकी सामान्य रूपसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे (१) सिद्धि होती है, और अतीन्द्रिय प्रकृत्यादि पदार्थोंकी सिद्धि सामान्यतोदृष्ट अनुमान प्रमाणसे होती है, और जो याग–अपूर्व–स्वर्ग इत्यादि पदार्थ अनुमानसे भी गृहीत नहीं होते उनकी शब्द प्रमाणसे सिद्धि होती है ॥६॥

ननु प्रकृत्यादौ प्रत्यक्षमेव कथं न प्रवर्तत इत्याकाङ्क्षायां प्रत्यक्षविघटकान् (५) हेतूनाह—

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् ।

---

(१) सामान्यतोदृष्टादनुमानादतीन्द्रियाणां प्रकृत्यादीनां प्रतीतिरित्यन्ये। (२) महत्तत्त्वकारणस्य प्रधानस्यापि कारणस्वीकारेऽनवस्थाभिया कारणान्तरबाधादित्यर्थः। (३) अनुमानादपि। (४) 'यजेत स्वर्गकाम'इत्यादिनोक्तं यागफलं स्वर्गरूपं, तत्साधनं चापूर्वाद्यतीनिन्द्रयं शब्द प्रमाणात् सिद्धमिति भावः। (५) प्रत्यक्षप्रवृत्तिप्रतिबन्ध कान्।

सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च ॥ ७ ॥

अतिदूरादिति प्रत्यक्षं न प्रवर्तत इति शेषः। अत्यूर्ध्वंगतः पक्षी न दृश्यते दूरत्वदोषात्, (१) दोषश्च क्वचित् कश्चिदेव, अन्यथा सूर्यादिमण्डलदर्शनं न स्यादिति। चक्षुर्गोलगतः कर्पूरादि (२) रतिसामीप्यान्न गृह्यते, अत्राप्यतिपदस्यान्वयः। इन्द्रियं गोलकं तस्य घातान्नाशात् (३)। मनोऽनवस्थानात्—व्यासङ्गेन तदिन्द्रियसंयोगाभावात् (४)। सौक्ष्मादिन्द्रियायोग्यत्वात्। व्यवधानात् कुडचादेः। अभिभवो = बलवत्सजातीयसम्बन्धो, यथा सौरालोकाभिभवाच्चन्द्रप्रभा न गृह्यते। समानाभिहारः=समगुणानां मिश्रणं, यथा माहिषादिदुग्धे पतितं गव्यदुग्धं न गृह्यते ॥ ७ ॥

हिंदी—प्रश्न—प्रकृत्यादि पदार्थोंका प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ?

उत्तर—१ बहुत दूर होनेसे प्रत्यक्ष नहीं होता जैसे आकाशमें बहुत ऊपर गये पक्षीका दूरता दोषसे प्रत्यक्ष नहीं होता। २ बहुत पास होनेसे भी प्रत्यक्ष नहीं होता जैसे अपने ही आंखमें लगा हुआ काजल दिखाई नहीं देता। ३ इन्द्रियों के घात (नाशसे) भी प्रत्यक्ष नहीं होता, जैसे अन्धेको रूप नहीं दिखाई देता। ४ मनके एक विषयमें आसक्त होनेसे भी प्रत्यक्ष नहीं होता, जैसे कामी पुरुषको आंख के सामने रहनेवाले पदार्थ भी नहीं दिखाई पड़ते। ५ अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वस्तु नहीं दीख पड़ती, जैसे परमाणु पदार्थ पास होने पर भी अतीन्द्रिय होनेसे नहीं दीख पड़ते। ६ व्यवधान (बीचमें दीवाल इत्यादिकोंका आड़) होनेसे भी पदार्थ नहीं दिखाई देते। ७ अभिभव-(तिरस्कार) से भी पदार्थका प्रत्यक्ष नहीं होता, जैसे दिनमें सूर्यप्रकाशसे तिरस्कृत होनेके कारण चन्द्रमा नक्षत्र आदि नहीं दीख पड़ते। ८ समानाभिहार (समान पदार्थ में मिल जाने) से भी प्रत्यक्ष नहीं होता, जैसे वर्षाका पानी नदीके पानीमें मिल जानेसे अलग नहीं दिखाई देता ॥७॥

नन्वेषामन्यतराधीनः प्रत्यक्षाभाव इति भवदीयं मतं, तन्न युक्तं प्रकृत्यादीनामभावनिबन्धन एव स (५) भविष्यतीत्यत्राह—

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।

---

(१) यदि दूरत्वदोषात् पक्ष्यूर्ध्वंगतो न दृश्यते कथमत्यूर्ध्वगतसूर्यदर्शनमत आह दोषश्चेति। (२) अञ्जनमादिपदग्राह्यम्। (३) यथा बधिरान्धयोर्न शब्दरूपग्रहणम्, (४) विषयान्तरासक्तमनसा तेन प्रत्यक्षजनकेन्द्रियेण सह संयोगाभावात् यथा कामिन्यासक्तचित्तस्य सन्निहितार्थादर्शनम्। (५) प्रत्यक्षाभावः।

महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च ॥ ८ ॥

सौक्ष्म्यादिति । सौक्ष्म्यान्निरवयवद्रव्यत्वेनेन्द्रियायोग्यत्वात् तेषां प्रकृत्यादीनामनुपलम्भो न प्रकृत्याद्यभावात्, कुतः ? कार्यतस्तदुपलब्धेः—कार्येण तेषां सिद्धेः, कार्यलिङ्गकतदनुमानस्यावाधितत्वादिति भावः । किं कार्यं तत्राह—महदादीति । आदिपदादहङ्कारपञ्चतन्मात्राणि गगनादयश्च । तत्र सरूपं महत्तत्त्वादिसप्तकं तत्त्वविभाजकोपाध्यवच्छिन्नजनकत्वात्(१), विरूपं गगनादि तादृशाजनकत्वात् (२) । एतत्कथनं कार्याणां विवेकज्ञानाय सारासारविवेकेनात्मतत्त्वज्ञानजिज्ञासाद्वारा साधर्म्यवैधर्म्यप्रकारककार्यतत्त्वज्ञानस्य कैवल्योपयोगित्वादित्यग्रे स्फुटीभविष्यति ॥ ८ ॥

हिंदी—प्रश्न—इन आठ हेतुओंमेंसे प्रकृत्यादि पदार्थोंके प्रत्यक्ष न होनेमें एक भी न मानकर, उक्त पदार्थों का अभाव होनेसे ही उनका प्रत्यक्ष नहीं होता ऐसा क्यों न माना जाय ?

उत्तर—अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण परमाणुओं के समान प्रकृत्यादि पदार्थोंकी उपलब्धि (प्रत्यक्ष) नहीं होती न कि उनका अभाव होनेसे, क्योंकि महत्तत्व अहङ्कारादिकार्योंसे अनुमान द्वारा उनकी सिद्धि होती है । वे महत्तत्वादिकार्य जो प्रकृतिके समानधर्म तथा विरुद्धधर्मवाले दो प्रकारके होते हैं, आगे सिद्ध किये जायंगे, क्योंकि साधर्म्यवैधर्म्य प्रकारक कार्यतत्त्वज्ञान ही मुक्तिमें उपयोगी होता है ॥८॥

ननु तार्किकनये (३) सतोऽसज्जायते, तथा च यावत् कार्यं न जातं तावत्पर्यन्तं कारणस्य प्रमाणाभावेनाऽसत्त्वापत्तिः, तथा च कथं पश्चादपि तस्य (४) सत्त्वं स्यात् नहि कार्येणासतः (५) सत्त्वं कर्तुं शक्यते, तत्राह—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् ॥ ९ ॥

असदिति । कार्यं कारणव्यापारात् प्रागपि सदेव न तु तदानीमसत् अत्र हेतुमाह असदकरणात्=(६) असतो नृशृङ्गतुल्यस्य प्रागविद्यमानस्योत्पादनास-

---

(१) तत्त्वविभाजक—साङ्ख्याभिमतपदार्थविभाजकोपाध्यवच्छिन्नजनकत्वं यथा प्रकृतौ वर्तते तथा तत्त्वविभाजकोपाध्यवच्छिन्नजनकत्वं महत्तत्त्वादिषु सप्तसु । (२) तत्त्वविभाजकोपाध्यवच्छिन्नाजनकत्वात् । (३) सतः कारणात् परमाण्वादेरसत् कार्यं द्वचणुकादि जायत इत्यर्थः । (४) कारणस्य । (५) कारणस्य । (६) विमतं कार्यं कारणव्यापारात् प्रागपि सद् भवितुमर्हति उत्पाद्यमा-

म्भवात्, अन्यथा नृश्रृङ्गस्यापि करणापत्तेः (१), असत्त्वाविशेषात्। हेत्वन्तरमाह—उपादानग्रहणात्=उपादानं समवायिकारणं तस्य कार्यार्थिना ग्रहणात्, यथा दध्यर्थी क्षीरमुपादत्ते नान्यत्, यदि चासत् कार्यं स्यात् तर्हि दध्यर्थी उदकस्योपादानं कुर्यात् न च कुरुते, तस्मादुपादानग्रहणादपि ज्ञायते कारणे कार्यमस्तीति। हेत्वन्तरमाह—सर्वसम्भवाभावात्=लोके यद्यस्मिन्नस्ति तदेव तस्माज्जायत इति वक्तुं शक्यं मृदादिभ्य एव घटादिदर्शनात् यदि चासत् कार्यं स्यात् तदा तत् सर्वं सर्वत्र सम्भवेत्—असत्त्वाविशेषात्। न च यत्र यस्य प्रागभावोऽस्ति स एव तत्र जायत इति वाच्यम्। तन्त्वनुत्पाददशायां पटप्रागभावः कुत्र स्यात्। न च काल इति वाच्यम्। प्रागभावस्य क्रियाविरहेण तन्तावागमनविरहे तन्तुवृत्तित्वं न स्यात्। (२) न चाधिकरणतन्तुरूप एव प्रागभावः, तर्ह्यधिकरणत्वाविशेषत्वाद् घटादिप्रागभावरूपतापि स्यात् (३)। न च पटतिरूपितकारणत्व नियामकम्, असतः पटादेर्निरूपकत्वादिधर्मासम्भवात्, सदसतोरसम्बन्धात् (४), निरूपकत्वादेर्निरूपकत्वस्वरूपत्वे तु तद्दोषतादवस्थ्यम्, कारणे कार्यासत्तायां (५)तन्निरूपितकारणता मृद्येव नान्यत्रेति नियामकाभावादित्याद्यन्यत्र विस्तरः।

हेत्वन्तरमाह—शक्तस्य शक्यकरणादिति। कार्यशक्तिमत्त्वमेवोपादानत्वम्, अन्यस्य (६) दुर्वचत्वात्, शक्तिश्च कार्यस्यानागतावस्थैव, अर्थान्तरत्वे तस्याः कार्यासम्बद्धत्वे अव्यवस्था, (७) सम्बद्धत्वे नासता सम्बन्ध इति शक्तस्य शक्यकरणादपि सत् कार्यमित्यर्थः। हेत्वन्तरमाह—कारणभावाच्चेति। 'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासी' दित्यादिश्रुतेरुत्पत्तेः प्रागपि कार्यकारणाभेदश्रवणेन कार्यस्य कारणात्मकत्वादपि सत् कार्यम्, असत्त्वे हि सदसतोरभेदानुपपत्तेरित्यर्थः। अपि च लोके यदात्मकं कारणं तदात्मकं कार्यमिति दृष्टं, यथा कोद्रवेभ्यः कोद्रवा व्रीहिभ्यो व्रीहयो जायन्ते, यदि चासत् कार्यं स्यात् तदा कोद्रवेभ्यो व्रीहीणां व्रीहि-

---

नत्वाद् यदेवं तदेवं यथा तिलेषु तैलम्, न यदेवं न तदेवं यथा नरविषाणमिति।
(१) उत्पादनापत्तेः। (२) अभावोऽधिकरणस्वरूप इति प्रभाकरमतं निराकरोति नेति। (३) नियामकाभावादित्यभिप्रायः। (४) तेजस्तिमिरयोरिव। (५) कार्यनिरूपितकारणता। (६) शक्तिरहितस्य। (७) असम्बद्धत्वाविशेषेण सर्वस्मात्सर्वं सम्भवेदित्यव्यवस्था, यथाहुः साङ्ख्यवृद्धाः—

असत्त्वान्नास्ति सम्बन्धः कारणैः सत्त्वसङ्गिभिः।
असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः॥ इति।

भ्यश्च कोद्रवाणामुत्पत्तिः स्यात् , न च दृश्यते, तस्मात् कार्यस्य कारणात्मकत्वादपि सत् कार्यमिति । न च कार्यस्य (१)नित्यत्वप्रसक्त्या सामग्रीवैयर्थ्यंप्रसङ्ग इति वाच्यम् । सामग्र्या अभिव्यक्त्यर्थत्वात् । न चाभिव्यक्तेरपि जन्यत्वे सत्कार्यवादबाधः स्यात्, नित्यत्वे सदैवाभिव्यक्तिः स्यात्, तस्या अप्यभिव्यक्त्यपेक्षायामनवस्थापत्तिरिति वाच्यम् । व्यवहारोपयोगितत्तत्कार्याभिव्यक्तेस्तत्तत्कार्यनिष्ठसत्त्वगुणरूपतया नित्यत्वेऽपि तमसा प्रतिबद्धत्वान्न व्यवहारोपयोगित्वम्, अभिव्यञ्जकसामग्र्या तूत्तेजकेन मणे (२) रिव तमसः प्रतिबन्धव्यावहाराक्षमत्वमिति, सामग्र्या उत्तेजकत्वमात्राङ्गीकारात् सत्कार्यवादबाधाभावात्, तस्मात् कार्यकारणयोरभेदेऽपि व्यवहारक्षमता कार्यात्मनाभिव्यक्तस्यैव नान्यथा, अतो न कोऽपि दोष इत्यास्तां विस्तरः ॥ ९ ॥

हिंदी—वह महत्तत्वादिकार्य सांख्यमतमें सत् है अर्थात् कारण व्यापारके पहिले भी उसकी अव्यक्त रूपसे सत्ता है, क्योंकि यदि असत् हो तो उसे कोई भी सत् नहीं कर सकता, यदि ऐसा हो तो असत् शशविषाणभी सत् हो जाय । इसी तरह कार्यार्थी समवायि कारणका ग्रहण करता है, जैसे दहीको चाहने वाला दूधका ग्रहण करता है न कि जलका, यदि दधिरूप कार्य असत् हो अर्थात् दूध रूपी समवायि कारणमें न हो तो दही चाहनेवाला जल लेकर भी दहीको बना ले, इसलिये कार्य कारणमें सत् ही है, और यदि कार्य कारणमें असत् हो तो कार्यकी असत्ता सभी कारणोंमें समान होनेसे सभी कारणोंसे सब कार्य पैदा होने लगेंगे, ऐसा नहीं है, क्योंकि संसारमें जो कार्य जिस कारणमें है वह कार्य उसी कारणसे पैदा होता है, जैसे मिट्टीसे घटादिकार्य ही होते दिखाई देते हैं न कि पटादि कार्य, इसलिये सर्वसम्भव रूप दोष आनेसे भी कार्य कारणमें सत् है यही सिद्ध होता है ।

प्रश्न—कारणमें ऐसी एक शक्तिकी विशेषता मानेंगे कि जिससे वह अपनेही कार्यको पैदा करेगी, इसलिये सर्वसम्भव रूप दोष नहीं आसकता, तब कार्यको

अर्थान्तरस्य सत्त्वात् कार्यस्य घटादेरसत्त्वात् सदसतोरसम्बन्धादव्यवस्थेति वा ।

(१) सत्कारणात्मकत्वादित्यादिः । (२) कारणीभूताभावप्रतियोगित्वं प्रतिबन्धकत्वं कार्यानुकूलधर्मविघटकत्वं वा, तथा च कारणीभूतो योऽभावो मण्यभावस्तस्य प्रतियोगी मणिस्तस्यैवाग्निष्ठदाहरूपकार्यस्य प्रतिबन्धकत्वमिति भावः; प्रतिबन्धकस्य प्रतिबन्धकत्वमुत्तेजकत्वम् ।

कारण व्यापारके पहिले कारणमें सत् माननेकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—वह कारण शक्ति की विशेषता अपने शक्य (अपनेसे होने योग्य) ही कार्यमें माननी पड़ेगी, यदि सर्वत्र माने तो फिर भी सब कारणोंसे सभी कार्य पैदा होनेका पूर्वोक्त दोष आ जायगा, इसलिये जब अपने २ कार्योंमें कारणोंकी शक्तिका सम्बन्ध मानना आवश्यक है तो बिना कार्यको सत् मानें सम्बन्ध हो नहीं सकता अतः कार्य सत् है। इसी तरह कार्य तथा कारणका अभेद होनेसे अर्थात् कार्यके कारणस्वरूप होनेसे भी कार्यको सत् मानना आवश्यक है क्योंकि जब कारण सत् है तो तद्रूप कार्य असत् कैसे हो सकता है। जैसे पट तन्तुओं का धर्म है उसी तरह संसारके सभी कार्य अपने २ कारणका धर्म होनेसे कार्योंसे कारण भिन्न नहीं हैं, अर्थात् धर्मधर्मि भावमें भेद नहीं होता, इत्यादि व्यतिरेक्ति अनुमानोंसे भी कार्य तथा कारणका अभेद सिद्ध होता है। यह विषय विस्तारसे तत्त्वकौमुदीमें लिखा है पाठकोंको वहीं देखना चाहिये ॥ ९ ॥

तत्र पूर्वस्यामार्यायां महादादिकार्यं प्रकृतिविरूपं सरूपं चेत्युक्तम्, तदिदानीं विशिष्य ज्ञानाय दर्शयति—

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥ १० ॥

हेतुमदिति। व्यक्तं महदादि पृथिव्यन्त त्रयोविंशतिसङ्ख्यं हेतुमत्, हेतुः कारणं यस्याविर्भावे तद्धेतुमत्, कदाचिदाविर्भावशीलम्। अनित्यं=कदाचित् तिरोभावशीलम्। अव्यापि=असर्वगतं, विभुत्वे क्रिया न स्यात्। सक्रियं= प्रवेशादिक्रियावत्, बुद्ध्यादयो ह्येकं देहं त्यक्त्वा देहान्तरं प्रविशन्ति। अनेकं= प्रतिपुरुषं भेदात् सजातीयभेदवत्, तत्त्वं (१) चात्र स्वाश्रयप्रतियोगिकान्योन्याभावसमानाधिकरणतत्त्वविभाजकोपाधिमत्त्वम् (२), याति (३) चेदं महदादिषु महदादिप्रतियोगिकान्योन्याभावेन (४) महदन्तरादौ महत्त्वादेः समानाधिकरणत्वात्, प्रकृतौ तु न याति प्रकृत्यन्योन्याभावस्य प्रकृतावसत्त्वात्,

---

(१) सजातीयभेदवत्त्वम्। (२) स्वशब्देन महत्तत्त्वादिस्तस्याश्रयो महदादिः स प्रतियोगी यस्य तादृशो योऽन्योन्याभावस्तत्समानाधिकरणो यस्तत्त्वविभाजकोपाधिस्तादृशोपाधिमत्त्वम्। (३) समन्वेति, लक्षणं घटत इत्यर्थः। (४) सह।

(१) पुरुषे सत्त्वेऽपि तत्र प्रकृतित्वाभावात्। पुरुषेऽतिव्याप्तिवारणाय (तु) त्रिगुणत्वे सतीति विशेषणीयम्। अथवा अनेकत्वं=सर्गभेदेन भिन्नत्वम्, सर्गद्वयसाधारण्याभाववदिति यावत्, तेन नान्यत्रा (२)तिव्याप्तिः। आश्रितं=वृत्तिमत् (३), यथा, महत्तत्त्वं प्रधाने, अहङ्कारो बुद्धौ, पञ्चतन्मात्राण्यहङ्कारे, भूतानि तन्मात्रेषु, एवं यथासम्भवमूह्यम्। लिङ्गम्=लिङ्गयति ज्ञापयतीति लिङ्गमनुमापकम्, भवति हि कार्यमिदं कारणस्याव्यक्तस्यानुमिति(४) जनक, भोग्यत्वाद् भोक्तुः पुरुषस्य चानुमितिजनकम्। सावयवम्=अवयवैर्गुणैर्युक्तम् (५)। परतन्त्रं=साक्षात् परम्परया वा प्रकृत्यधीनस्वरूपपरिणामकं (६) भवति। एतद्वैधर्म्यं प्रकृतावाह—विपरीतमिति। अव्यक्तं=प्रकृतिः, विपरीतम्=अहेतुमत् कारणत्वविश्रान्तेस्तत्रै (७) वाङ्गीकारात्। नित्यम्=अनुत्पत्ति धर्मकत्वात्। व्यापि=सर्वगतत्वात्। निष्क्रियं शान्तादिक्रियाशून्यत्वात। एकं=सजातीयभेदशून्यम्। निराश्रितं=कारणशून्यत्वात्। अलिङ्गं=कारणाननुमापकम्, तेनास्य पुरुषानुमापकत्वेऽपि न हानिः। निरवयवम्=अकारणकत्वात्। स्वतन्त्रं=कार्ये स्वयं समर्थत्वात्। यद्यप्येते धर्माः पुरुषस्यापि तथापि गुणवत्त्वे सतीति विशेषणीयम्, तेन न तत्रातिव्याप्तिरिति संक्षेपः॥ १०॥

हिंदी—प्रश्न—विवेकज्ञानमें उपयोगी व्यक्त (जगत् कार्य) तथा अव्यक्त (प्रधान) के समान धर्म तथा विरुद्ध धर्म कौनसे हैं ?

उत्तर—व्यक्त महत्तत्त्वादि कार्य हेतुमान् अर्थात् जिसके आविर्भावमें कारण है, ऐसे हैं, और अनित्य अर्थात् कभी २ इनका तिरोभाव भी होता है। इसी

---

(१) प्रकृतेरेकत्वादिति शेषः। (२) पुरुषादौ। (३) निवृत्तितानियामकसम्बन्धेन, स्वकारणनिष्ठाधिकरणतानिरूपिततादात्म्यसम्बधावच्छिन्नाधेयतावत्त्माश्रितत्वमित्यर्थः, भवन्ति कार्यघटादयस्तादात्म्येन कारणे कपालादिपृथिव्यादौ वृत्तिमन्त इति। बुद्धिनिरूपिताधेयतावति पुरुषप्रतिबिम्बे बुद्धेः कारणत्वाभातिव्याप्तिः, प्रकृतेस्तु कारणाभावादेव नातिव्याप्तिः। (४) महदादयोऽव्यक्तकारणवन्तः परमितत्वात्समन्वयाद्वा घटादिवदित्यादिवक्ष्यमाणानुमितिजनकमित्यर्थः। (५) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धावयवरूपगुणैर्युक्तमित्यर्थः। (६) महदादीनां यत् स्वरूपं कार्यात्मना परिणामश्च तदुभयं प्रकृत्यधीनमित्यर्थः। (७) अव्यक्त एव।

तरह अव्यापि याने सबमें नहीं रहते, क्योंकि व्यापक होनेसे क्रिया न होगी। तथा सक्रिय हैं, अर्थात् बुद्धिचादिक एक एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश करते हैं। और हर एक आत्माके साथ भिन्न २ बुद्धयादिक होने से बुद्धयादिकार्य अनेक हैं, अथवा सृष्टिके भेदसे भिन्न २ होनेसे अनेक हैं। इसी तरह बुद्धयादिकार्य अपने २ कारणोंमें आश्रित हैं, जैसे महत्तत्व–प्रधानमें, अहङ्कार–बुद्धिमें इत्यादि। इन्हीं कार्योंसे अव्यक्त (प्रधान) तथा पुरुषका अनुमान किया जाता है, इसलिये 'लिङ्गयति ज्ञापयति इति लिङ्गम्' इस व्युत्पत्तिसे ये सब कार्य लिङ्ग अर्थात् ज्ञापक हैं। इसी प्रकार इनमें सत्त्व, रज, तथा तमोगुणका मेल होने से सब सावयव हैं। तथा बुद्धयादिकार्यों का साक्षात् अथवा परम्परासे प्रधानके अधीन ही स्वरूप परिणाम होता है इसलिये ये परतन्त्र हैं। ये सब बुद्धयादि कार्योंके समान धर्म हैं। इन धर्मोंका वैपरीत्य अव्यक्त प्रकृतिमें होता है, अर्थात् प्रकृति हेतुमान् नहीं है क्योंकि सब कार्योंका मूल कारण है, यदि इसका भी कारण माना जाय तो अनवस्था दोष हो जायेगा। और आविर्भावशील न होनेसे सभी कार्योंमें प्रकृतिका सम्बन्ध होनेसे वह व्यापक है, तथा शान्त, घोर, मूढादिक्रियारहित होनेसे निष्क्रिय है, तथा सजातीय भेदशून्य होनेसे एक है, और कारण रहित होनेसे निराश्रय, तथा पुरुषके अनुमापक होने पर भी अपने कारणका अनुमापक न होनेसे अलिङ्ग है और सत्त्वादि गुणात्मक होनेसे निरवयव है, तथा कार्योत्पत्तिमें स्वयं समर्थ होनेसे स्वतन्त्र है॥ १०॥

एवं व्यक्ताव्यक्तयोर्वैरूप्यमुक्त्वा सारूप्यमाह—

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।
व्यक्तं यथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥ ११ ॥

त्रिगुणमिति। व्यक्तं = महदादि, तथा प्रधानं = प्रकृतिः। त्रिगुणं = सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणा यस्य तत् त्रिगुणम्, तत्र प्रकृतेर्गुणत्रयसाम्यावस्थारूपत्वात्, महदादेश्च प्रकृतिकार्यत्वेन गुणसम्बन्धात् (१) अविवेकि = प्रकृत्यभिन्नम्, तत्र महदादेः प्रकृत्यभिन्नत्वं कार्यकारणयोरभेदात्, प्रकृतेस्तु स्वत एव। विषयः = ज्ञानभिन्नः, न तु योगाचारमतवज्ज्ञानाकारः, तथा सत्येकस्य बहुभोग्यता न

(१) त्रिगुणत्वमिति पूर्वेणान्वयः। अविवेकीति। विविच्यते भिद्यते स्वस्मात्स्वकारणाद्वेत्यविवेकि।

स्यात्, ज्ञानस्य तत्तदीयस्य तत्तत्पुरुषमात्रवेद्यत्वात् सामान्यं=गुणवत्त्वेन तुल्यम्, अथवा भोग्यत्वेन सर्वपुरुषाणां पण्यस्त्रीवत् तुल्यम्। अचेतनं=स्वप्रकाशचेतनाद्भिन्नम्, अनवभासकत्वात्। प्रसवधर्मि=प्रसवोऽन्याविर्भावहेतुत्वधर्मो यस्य तादृशम्, यस्माद् बुद्धादिकमहङ्कारादिकं प्रसूते प्रधानं तु बुद्धिं प्रसूते।

तदिदं सर्वं व्यक्ताव्यक्तयोः सारूप्यमुक्तम्, अधुना व्यक्ताव्यक्तयोः पुरुषस्य च साधर्म्यं चाह—तद्विपरीतस्तथा च पुमानिति। ताभ्यां व्यक्ताव्यक्ताभ्यां विपरीतो विरूपः, निर्गुणत्वात् निर्विषयत्वात् निःसामान्यत्वात् चेतनत्वात् अप्रसवधर्मित्वाच्च, तथा चाव्यक्तसरूपोऽप्यहेतुमत्त्वादिना, एवं व्यक्तसरूपोऽप्यनेकत्वसङ्ख्ययेति भावः॥ ११॥

हिन्दी—प्रश्न—इन दोनोंका परस्परमें साधर्म्य तथा पुरुषमें वैधर्म्य क्या है?

उत्तर—महदादि व्यक्त तथा प्रधानरूप अव्यक्त ये दोनों त्रिगुण हैं अर्थात् सत्त्व, रज—तथा तमोगुण वाले हैं, क्योंकि उक्त तीनों गुणोंकी समान अवस्था ही प्रकृति है और महत्तत्वादि प्रकृतिका कार्य होनेसे उनमें भी तीनों गुणोंका सम्बन्ध है। इसी तरह ये दोनों अविवेकि हैं, अर्थात् प्रकृतिसे अभिन्न हैं क्योंकि कार्य तथा कारणका अभेद होता है, और प्रकृति स्वयं ही अभिन्न है। तथा विषय अर्थात् ज्ञानसे भिन्न बाहर इन दोनोंका ग्रहण होता है, न कि बौद्धमतके समान ये ज्ञानके आकार हैं, ज्ञानाकार माननेसे बुद्ध्यादिक अनेक पुरुषके भोगके योग्य न रहेंगे क्योंकि भिन्न २ विज्ञान तत्तत्पुरुषसे ही जाने जाते हैं इसलिए साधारणता नहीं आ सकेगी। इसीलिए व्यक्त तथा अव्यक्त सामान्य हैं, अर्थात् वेश्याके समान सब पुरुषोंकी भोगयोग्यता इनमें समान है। तथा ये दोनों अचेतन अर्थात् अप्रकाशक होनेसे स्वयंप्रकाश चेतनसे भिन्न हैं। तथा प्रसवधर्मि अर्थात् समान तथा असमान परिमाणको सदा पैदा करनेवाले हैं, क्योंकि प्रधानसे बुद्धि तथा बुद्धिसे अहङ्कारादि कार्य सदा पैदा हुआ करते हैं। अब इन दोनोंसे पुरुष (आत्मा) के वैधर्म्यको सुनो—व्यक्त तथा अव्यक्त त्रिगुण हैं और पुरुष निर्गुण है, व्यक्ताव्यक्त अविवेकी है तो पुरुष विवेकी है, इसी तरह पुरुष अविषय, असाधारण, चेतन तथा अप्रसवधर्मी है क्योंकि पुरुषसे किसीकी उत्पत्ति नहीं होती इत्यादि स्वयं जान लेना चाहिये। यद्यपि अहेतुमत्त्व, नित्यत्व इत्यादि व्यक्तका साधर्म्य तथा अनेकत्वरूप व्यक्तका साधर्म्य भी पुरुषमें हैं, तथापि त्रिगुणत्वादिरूप व्यक्त तथा अव्यक्तके साधर्म्यका अभाव पुरुषमें होनेसे व्यक्ताव्यक्तका वैधर्म्य पुरुषमें आही जाता है॥ ११॥

त्रिगुणमित्युक्तं, तत्र किमात्मका गुणाः किमर्थाः किं प्रवृत्तयश्च ? तत्राह—

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः ।
अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः ॥ १२ ॥

प्रीत्यप्रीतीति । गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि यथासङ्ख्यं प्रीत्यादिरूपाः, तत्र प्रीतिः सुखम्, उपलक्षणमार्जव (१) मार्दवह्रीश्रद्धाक्षमानुकम्पाज्ञानादीनाम् । अप्रीतिर्दुःखम्, उपलक्षणं प्रद्वेषद्रोहमत्सरनिन्दानिकृत्या (२) दीनाम् । विषादो मोहः, उपलक्षणं विप्रलम्भ (३) मयनास्तिक्यकौटिल्यकार्पण्याज्ञानादीनाम् । यत्र (४) तदुपलभ्यते तत्र तादृग्गुणः (५) प्रत्येतव्य इति भावः । लक्षणमुक्त्वा प्रयोजनमाह—प्रकाशेत्यादि । प्रकाशोऽवभासः, प्रवृत्तिश्चालनं, नियमः प्रतिबन्धोऽर्थः प्रयोजनं येषां ते तादृशाः । तत्रावभासः सत्त्वेन, चालनं रजसा, प्रतिबन्धस्तमसा । तथाहि सत्त्वं रजसा चालितं कार्यं जनयेद् यद्यावरकेण तमसा न नियम्येत, तथा च तमसा प्रतिबन्धात् तत् स्वार्थक्षमं न भवति, अतस्तत्प्रतिबन्ध-(६) स्तस्य प्रयोजनं बोध्यम् । (७) अन्योन्येति । अत्रान्योन्यपदं वृत्तिपदं च चतुर्ष्वप्यन्वेति (८) । तथा चान्योन्याभिभववृत्तयः, तथाहि सत्त्वमुत्कटं भूत्वा रजस्तमसी अभिभूय शान्तां वृत्तिं लभते (९), एवं रजः सत्त्वतमसी अभिभूय घोराम् (१०), एवं तमः सत्त्वरजसी अभिभूय मूढाम् । अन्योन्याश्रयवृत्तयः= अन्यतमो गुणः स्वकार्यार्थमन्यावाश्रित्य (११) सहकारिणौ कृत्वा प्रवर्तते । अन्योन्यजननवृत्तयः=कार्यस्य त्रिगुणात्मकत्वादन्योन्यजनका इत्यर्थः । अन्योन्यमिथुनवृत्तयः=स्त्रीपुरुषवदन्योन्यसंयोगशीला इत्यर्थः । अत्रायं विशेषः—एको

---

(१) आर्जवं सरलता । (२) निकृतिः पराभवः । (३) विप्रलम्भो वञ्चनम् । (४) सुखादि । (५) सत्वादिः । (६) सत्त्वनियमनम् । (७) सत्वादीनां प्रवृत्तिप्रकारमहान्योन्येति । (८) द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमन्वेतीति नियमादिति भावः । (९) शान्तावस्थायां रजस्तमसोरभिभवेन सत्त्वस्य प्रवृत्तिर्भवतीति भावः । (१०) वृत्तिं लभते इति पूर्वेणान्वयः । एवमग्रेऽपि । (११) अपेक्ष्य, न त्वत्र गुणानामाधाराधेयभावरूपमाश्रितत्वं सम्भवति विभुत्वात्किन्तु यमपेक्ष्य यस्य क्रिया भवति स तस्याश्रयः, यथा सत्त्वं प्रवृत्तिनियमावाश्रित्य रजस्तमसोः प्रकाशेनोपकरोतीति, एवमन्यत्रापि बोध्यम् ।

यदाधिकस्तदापरो दुर्बलाविति, (१) तथैव दर्शनात् ॥ १२ ॥

हिंदी—प्रश्न—त्रिगुणोंका स्वरूप प्रयोजन तथा उनके प्रवृत्तिका प्रकार क्या है ?

उत्तर—सत्त्व, रज, तथा तम नामके गुण क्रमसे सुख-दुःख तथा मोहात्मक हैं अर्थात् सुख-दुःख तथा मोह ही इनका स्वरूप है। और प्रकाश करना, प्रवृत्ति-करना, तथा नियमन याने रोकना यह क्रमसे इनका कार्य है, अर्थात् सत्त्वगुणसे प्रकाश होता है—(नाना प्रकारके कार्य करनेका ज्ञान होता है), और रजोगुणसे नाना कार्य करनेमें प्रवृत्ति होती है, तथा तमोगुणसे कार्य करनेमें प्रवृत्ति रुक जाती है। और इन तीनों गुणोंमें से एक २ गुण दो दो गुणों को दबाकर अपनी अपनी मुख्य शान्तादि वृत्तिको प्राप्त करते हैं इसलिये परस्पर अभिभववृत्तिवाले हैं, और इनमेंसे एक २ गुण अपने २ कार्यके लिये दूसरे दो गुणों का सहारा लेकर प्रवृत्त होते हैं इसलिये परस्पराश्रय वृत्ति हैं, और संसारके सभी कार्योंके त्रिगुणात्मक होनेसे परस्पर जनक भी हैं, तथा स्त्री पुरुषके समान आपसमें संयोग-स्वभाव भी हैं, पर विशेषता यह है कि जब इनमेंसे एकगुण अधिक बलवान् होता है तो दो गुण दुर्बल होते हैं ॥ १२ ॥

सत्त्वादीनामसाधारणं धर्मं विवेकोपयोगायाह—

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः ।

गुरु वरणकमेव (२) तमः प्रदीपवच्चार्थतो (३) वृत्तिः ॥१३॥

सत्त्वं लघ्विति । लघु = लघुत्ववत् , प्रकाशकमिन्द्रियार्थसन्निकर्षे सत्यर्थावभासकम्. सत्त्वाधिक्येन चाङ्गानां लघुताया उपलब्धेरिन्द्रियाणां विषयग्रहणसामर्थ्यदर्शनाच्च. लघुत्वं प्रकाशकत्वं च सत्त्वस्य लक्षणम् , तत्र लघुत्वं कार्योद्गमनहेतुभूतो धर्मः (४), इष्टं = साङ्ख्याचार्यैः । उपष्टम्भकं = संश्लेषजनकम् (५), चलं = सक्रियम् , रजसैव संश्लेषक्रिययोरुपलम्भात् , प्रेरकत्वं सक्रियत्वं

---

(१) गुणप्रधानाभावेनैतेषामन्योन्यसहचरवृत्तितेति भावः ।

(२) एवकारो भिन्नक्रमः प्रत्येकं सम्बध्यते, सत्त्वमेव रज एव तम एवेति ।

(३) पुरुषार्थत इति यावत्, तथा च वक्ष्यति 'पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते कारणमिति' । (४)गौरवविरोधी पटुताख्यः, येनाग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोश्च तिर्यग्गमनं जायते स लाघवाख्यो धर्म इति भावः । (५)स्वस्वकार्यानुकूलोत्तेजनकारित्वम्,

च रजसो लक्षणमिति भावः। गुरु = गुरुत्ववत्, वरणकम् = आवरकम्, तमसैवाङ्गगुरुत्वविषयावभासप्रतिबन्धयोर्दर्शनात्, गुरुत्वं तत्तदिन्द्रियव्यापारनिवृत्तिद्वारा तत्तत्कार्यप्रतिबन्धकत्वं च तमोलक्षणमिति भावः। नत्वेतत्कथनेन सत्त्वरजस्तमांसि जात्यन्तराण्येवेति लभ्यते, तथा च तेषां परस्परविरुद्धानां कथमेकत्र प्रवृत्तिः सम्भवति परस्परविरुद्धानां शत्रूणामेकार्थकरणानुपलम्भात्, तत्राह—प्रदीपवदिति। यथा तैलवर्तिदीपानां परस्परं विरोधेऽपि तैलवर्तिभ्यां सह दीपः प्रकाशं जनयति तद्वदित्यर्थः, दीपोपरि तैलपतनेन दीपनाशात् तैलमपि दीपविरोधि, एवं वर्तिरपि स्वल्पकेन दीपनाशिकेति ॥ १३ ॥

हिंदी—प्रश्न—विवेक ज्ञानमें उपयोगी उक्त तीनों गुणोंके विशेषधर्म तथा उनके नाम क्या हैं?

उत्तर—इनमेंसे पहिला सत्त्वगुण लघु (हलका) है तथा प्रकाश है क्योंकि सत्त्वगुणकी अधिकतामें ही शरीर में हलकापन पाया जाता है और इन्द्रियोंसे अपने २ विषयका ज्ञान भी शीघ्रतासे होता है, इसीलिये लघुत्व तथा प्रकाशकत्व का सत्त्वगुणका सांख्याचार्योंने लक्षण माना है, जिससे कार्योंका उद्‌गमन होता है। और दूसरा रजोगुण उपष्टम्भक अर्थात् प्रवर्त्तक और चल याने सक्रिय है, क्योंकि रजोगुण ही कार्य से करनेमें प्रवृत्ति होती है और चलन भी उसीसे होता है, इसीलिए प्रवर्तकत्व और सक्रियत्व ये दोनों धर्म रजोगुणके लक्षण हैं। और तीसरा जो तमोगुण है वह गुरु (भारी) तथा वरणक–प्रतिबन्धक होता है, क्योंकि तमोगुण से ही शरीर तथा इन्द्रियोंमें भारीपना और विषय-ज्ञान की रुकावट देखनेमें आती है, इसीलिए गुरुत्व तथा प्रतिबन्धकत्व ये दोनों तमोगुण के लक्षण सांख्यशास्त्रमें माने गये हैं। यद्यपि ये तीनों गुण परस्पर विरोधी होनेसे मिलकर किसी एक कार्यमें प्रवृत्त नहीं हो सकते, तो भी जैसे वत्ती तेल और आग इनके परस्पर विरुद्ध होने पर भी अन्धकार–नाश द्वारा रूपप्रकाशरूप कार्यके लिये तीनों आपसमें विरोध छोड़ कर पदार्थों को प्रकाशित करते हैं उसी तरह उक्त तीनों गुण आपसमें विरोध छोड़

यतः सत्त्वतमसी स्वयं प्रवृत्तिशून्यतया स्वस्वकार्यानुकूलां प्रवृत्तिं प्रत्यसमर्थे भवतस्ततो रजोगुणेन स्वप्रवृत्त्योपष्टभ्येते–असामर्थ्यात्प्रच्याव्य स्वस्वकार्ये प्रकाशाख्ये नियमने चोत्तेजनं कार्येते, उत्तेजनस्य सक्रिये पदार्थे एव सम्भवाच्चलंसक्रियमपि रज इति भावः।

कर भोगापवर्गरूप पुरुषार्थके लिए आपसमें मिलकर कार्य कर सकेंगे ॥१३॥

अविवेकित्वादिकं प्रकृत्यादिसाधर्म्यमुक्तं तत् कथं तेषु (१) सिद्धमित्यत आह—

अविवेक्यादिः(२) सिद्धस्त्रैगुण्यात् तद्विपर्ययाभावात् ।
कारणगुणात्मकत्वात् कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्धम् ॥ १४ ॥

अविवेक्यादिरिति । अत्राविवेक्यादिरिति धर्मपरः, अविवेकित्वादिकं प्राङ्निरुक्तं महदादिष्ववाधितम्, कुतः ? त्रैगुण्यात्, प्रकृतिवत् त्रिगुणत्वात् (३)। व्यतिरेकसहकारेणैव येऽनुमानमिच्छन्ति तान् प्रत्याह—यद्विपर्ययेति । तस्याविवेकित्वस्य विपर्ययो यत्र स तद्विपर्यय आत्मा तत्र त्रैगुण्याभावात्, तथा च यत्राविवेकित्वाभावस्तत्र त्रैगुण्याभावः आत्मवदिति व्यतिरेकव्याप्तिरस्त्येव, अतस्तत्सिद्धि(४) रप्यवाधितैवेति भावः। ननु प्रकृत्यनन्यत्वं महदादीनामुक्तं प्रकृतिसिद्धिरेव तु कुतस्तत्राह—कार्यस्येति । महत्तत्वादीनां कारणाभावे नित्यत्वापत्त्याऽऽत्मनोऽनिर्मोक्ष एव स्यादिति जन्यत्वमेवावश्यकम्, जन्यं च तत्समानजातीयगुणककारणकमेव वाच्यं तथैवानुभवात्, कारणं च(५)तन्नित्यमेव तस्यापि कारणस्वीकारेऽनवस्थापत्तिः स्यात् अतोऽव्यक्तं प्रधानम्, अपिना तत्त्रैगुण्यं च सिद्धमित्यर्थः ॥ १४ ॥

हिंदी—प्रश्न—पूर्वोक्त अविवेकत्वादिधर्म प्रधान तथा महत्त्वादि व्यक्तोंमें क्यों माने जाते हैं ?

उत्तर—त्रिगुणात्मक होनेसे महदादिक भी अविवेकित्वादि धर्मवान् हैं जैसे—प्रकृति, इस प्रकार अन्वयि अनुमान द्वारा उक्त धर्मोंकी सिद्धिके समान व्यतिरेकी अनुमानसे भी होती है क्योंकि अविवेकित्वादि धर्मोंका जहां विपर्यय—अभाव है, वहां त्रैगुण्य भी नहीं है, अर्थात् जहां अविवेकित्वादि धर्मोंका अभाव है वहां त्रैगुण्यका अभाव है जैसे आत्मा, इस प्रकार व्यतिरेकि अनुमानसे भी प्रधान तथा महदादिकोंमें अविवेकित्वादि धर्मोंकी सिद्धि अवाधित है ।

---

(१) प्रकृत्यादिषु । (२) अविवेकित्वादिकम्, 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचन' इत्यादिवत् प्रधाननिर्देशात् एतदेवाग्रे चन्द्रिकाकृता प्रदर्शितं धर्मपर इत्यनेन ।

(३) तथा च प्रयोगः—इदं व्यक्तमविवेक्यादियोगि त्रिगुणात्मकत्वादव्यक्तवदिति । (४) महदादौ त्रैगुण्यस्य सिद्धिरित्यर्थः । (५)अव्यक्तरूपं कारणमित्यर्थः ।

प्रश्न—प्रधान सिद्ध हो तो उसमें उक्त धर्म माने जांय तथा अन्वयी अनुमान से उसे दृष्टान्त भी दिया जाय, अभी उसकी सिद्धिमें ही सन्देह है ?

उत्तर—यह नहीं हो सकता क्योंकि जैसे व्यावहारिक कार्योंमें यदि काले तन्तु हों तो उनमें काला कपड़ा बनता है, यह नियम है, उसी तरह महदादि व्यक्त कार्य भी जब त्रिगुणात्मक अविवेकित्वादि-धर्मवाले उपलब्ध होते हैं तो तद्रूप मूल कारण अव्यक्त भी मानना आवश्यक है ॥ १४ ॥

महदादिभ्यो भेदेन प्रधानं हेतुभिः साधयति—

भेदानां (१) परिमाणात् (२) शक्तितः प्रवृत्तेश्च ।
कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य ॥ १५ ॥

भेदानामिति । कारणमस्त्यव्यक्तमित्युत्तरेणान्वेति । भिद्यन्त इति भेदा महदादयस्तेषां, परिमाणात् =परिमितत्वादव्यापित्वात्, अनेकत्वरूपभेदवत्त्वाद्वा, यद् यदनेकमव्यापि च तत् तत् कार्यम्, भवति च महदादिकं प्रतिपुरुषनियतत्वादनेकमव्यापि च, अतस्तत्कारणं योग्यतया नित्यमेकं प्रधानमेवेति भावः । हेत्वन्तरमाह—समन्वयात् । सुखदुःखमोहान्वितत्वरूपसमानधर्मवत्त्वादित्यर्थः, व्यावृत्तानामेषां (३) तत्समानस्वभावैककारणकत्वमावश्यकम्, तच्च कारणं योग्यतया प्रधानमेवेति भावः । इतश्चाऽस्ति प्रधानमित्याह शक्तितः प्रवृत्तेश्चेति । शक्तिमत्त्वादेव कार्यानुकूलप्रवृत्तिसम्भवात् कारणानाम्, शक्तेश्च प्रकृतिरेवापूरिका; यतः कार्यं महद्भवति यथा मृदापूराद् बीजं वृक्षादिरिति (४) भावः । इतश्चास्ति प्रधानमित्याह कारणकार्यविभागादिति । कारणे सतः कार्यस्यैव कूर्माङ्गानामिव

---

(१) अत्रेदमनुमानं—विवादाध्यासिता भेदा अव्यक्तकारणवन्तः परिमितत्वाद् घटादिवदिति, घटादयो हि परिमिता मृदाद्यव्यक्तकारणका दृष्टाः, उक्तमेतद्यथा कार्यस्याव्यक्तावस्था कारणमेवेति. यन्महतः कारणं तत् परमाव्यक्तं ततः परतराव्यक्तकल्पनायां प्रमाणाभावात् । (२) इतश्च विवादाध्यासिता भेदा अव्यक्तकारणवन्तः समन्वयात्, भिन्नानां सरूपता समन्वयः, सुखदुःखमोहसमन्विता हि बुद्ध्यादयोऽध्यवसायादिलक्षणाः प्रतीयन्ते, यानि च यद्रूपसमनुगतानि तानि तत्स्वभावाव्यक्तकारणकानि, यथा मृद्धेमपिण्डसमनुगता घटमुकुटानयो मृद्धेमपिण्डाव्यक्तकारणका दृष्टा इति । (३) परस्परं भिन्नानां महदादीनाम् ।

(४) बीजं वृक्षादिरूपेण परिणमत इत्यर्थः ।

निःसरणरूपपृथग्भावादिरूपविभागान्महदादिकार्यस्य तादृशतादृशावस्थाहेतुव्यक्तमेवेति भावः। इतश्चास्ति प्रधानमविभागाद्वैश्वरूप्यस्य, अत्र स्वार्थे ष्यञ्, विश्वरूपस्य त्रिलोकस्याविभागात् (१), प्रलये कारणेनैकीभावरूपाल्लयादित्यर्थः, तादृशकारणं विना तेषां भिन्नानामेकीभावरूपो लय एव न स्यादिति भावः। न च ब्रह्मैव तादृशकारणमस्तु कृतं प्रधानेनेति वाच्यम्। तस्य (२) शक्तिमत्त्वेन कारणत्वकल्पनापेक्षया शक्तित्वेन प्रधानकल्पनाया एवोचितत्वादिति सङ्क्षेपः॥ १५॥

हिंदी—प्रश्न—अनुमानसे सिद्ध होने पर भी उपलब्धि नहीं होती इसलिये प्रधान कैसे सिद्ध हो सकेगा?

उत्तर—यह भी ठीक नहीं क्योंकि पाषाणमें गन्ध रहने पर भी अनुत्कट होनेसे जैसे उसकी उपलब्धि नहीं होती वैसे सूक्ष्म होनेसे प्रधानकी उपलब्धि नहीं होती, परन्तु महदादि व्यक्त कार्योंसे भिन्न अव्यक्त अग्रिम हेतुओंसे सिद्ध होता है।

प्रश्न—महत्तत्वादिकों को ही सब कार्योंका कारण क्यों मानें?

उत्तर—ये परिमित—अव्यापि होने से घटादिकोंके समान अव्यक्त कारण वाले हैं, जैसे घट मट्टीरूप अव्यक्त कारण वाला है ऐसा अवश्य मानना पड़ेगा, कार्यकी अव्यक्तावस्था ही कारणहोता है, महदादि कार्योंके कारण ही को प्रधान कहते हैं, इसका भी कारण माननेसे अनवस्थादोष आजायगा। इसी प्रकार समन्वय रूप हेतुसे भी अव्यक्तकी सिद्धि होती है, भिन्नोंकी समानरूपता को समन्वय कहते हैं, सुख-दुःख तथा मोहसे सम्बद्ध बुद्धयादिक अध्यवसायादि पूर्वोक्त लक्षणवाले प्रतीत होते हैं, जो जिन रूपोंसे सम्बद्ध होते हैं वे उस स्वभाव अव्यक्त कारण वाले होते हैं, जैसे मट्टी, सोना इत्यादि कारणरूपोंसे सम्बन्ध घट मुकुटादि कार्य मट्टी आदि कारण वाले हैं, उसी तरह सुखदुःखमोहात्मक महदादि कार्योंका भी सुखदुःखमोहात्मक अव्यक्त कारण है, यह सिद्ध होता है। इसी तरह कारणकी शक्तिसे कार्यकी प्रवृत्ति होनेसे भी महदादि कार्योंका कारण मानना आवश्यक है क्योंकि असमर्थ कारणसे कार्यकी उत्पत्ति हो नहीं सकती, और वह कारणमें रहने वाली शक्ति सांख्यमतमें कार्यकी अव्यक्तावस्था

---

(१) त्रिलोक्या इन्युचितम्, एवमन्यत्रापि ज्ञेयम्। (२) ब्रह्मणः, भेदघटितसमवायकल्पनापेक्षयाऽभेदरूपतादात्म्यकल्पनायां लाघवाच्छक्तिमद्ब्रह्मका-

ही मानी गई है, यही तो तेलके पैदा करने वाली तिल्लियोंसे बालुओंका भेद है कि तिल्लीमें ही तेल अव्यक्तरूपसे रहता है न कि बालुओंमें, इसलिये महदादि कार्योंकी अव्यक्तावस्था अवश्य माननी चाहिये जिसे प्रधान या अव्यक्त कहते हैं।

इसी प्रकार संसारके सभी कारणोंमें विद्यमान ही कार्योंका अपने २ कारणोंसे प्रगट होना तथा अपने २ कारणोंमें लय होना, इस प्रकारके कारण कार्यके विभाग तथा अविभागसे भी यह सिद्ध होता है कि पृथिव्यादि भूतकार्योंका जिस मूल कारणसे आविर्भाव तथा उसमें लय होता है ऐसा मूल कारण ही अव्यक्त या प्रधान कहा जाता है, जिस प्रकार कछुवेके हाथ पैर इत्यादि शरीरके अवयव उसके शरीर में रहते हुए ही बाहर निकलते तथा भीतर पैठ जाते हैं उसी तरह प्रधानादि कारणोंमें विद्यमान ही महदादि कार्योंकी उत्पत्ति तथा उनमें लय होता इसलिये अव्यक्तरूप कारण मानना आवश्यक है ॥ १५ ॥

ननु यद्येकं प्रधानं कथं तर्हि तस्माद्विविधकार्योत्पत्तिः, न ह्येकतन्तुतः पटो दृश्यते तत्राह—

कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च ।
परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात् ॥ १६ ॥

कारणमिति । यदव्यक्तं जगतः कारणमस्ति, तत् त्रिगुणतः प्रवर्तते—सत्त्वादिगुणत्रयात् प्रवर्तते—कार्यं जनयति, तथा च गुणत्रयात्मके प्रधाने (१) बहुत्वमस्त्येव, अतो नानुपत्तिरिति भावः । एकजातीयजनकता (२)कथं तत्राह समुदयाच्चेति (३) । मेलनाच्चेत्यर्थः, गुणप्रधानभावेन (४) मिलित्वा चित्ररूपमिवैकं कार्यं जनयतीति भावः । भवतु महदादि कार्यमेकजातीयं, कार्यान्तरेषु (५) वैषम्यं तु कुतस्तत्राह प्रतिप्रतीति । एकैकगुणाश्रयेण यो विशेषस्तस्मादित्यर्थः, गुणवैषम्याद्वैषम्यमिति भावः । तत्र दृष्टान्तः परिणामतः सलिलवदिति । यथा सलिलमेकमपि नारिकेलजम्बीरादिपरिणामभेदान्मधुरतिक्तादिभावं प्रतिपद्यते तद्वदिदमपि सहकारिभेदादेव विषम (६) मिति भावः ॥ १६ ॥

हिंदी—प्रश्न—अव्यक्तकी प्रवृत्तिका प्रकार क्या है ?

रणकल्पनानुचितेति भावः । (१) गुणप्रधानभावेनोपमर्द्योपमर्दकभावरूपवैषम्यादानेकभेदसम्भवात् इत्यादिः । (२) अचेतनजातीयकार्यजनकतेत्यर्थः । (३) समेत्योदयः समुदयः । (४) गौणमुख्यभावेन । (५) जडप्रकाशरूपेन्द्रियतन्मात्रादिरूपेषु । (६) जडप्रकाशरूपविषमकार्यकारीत्यर्थः ।

उत्तर—प्रलयकी अवस्थामें भी सत्त्व, रज तथा तमोगुण समान परिणाम वाले होते हैं अर्थात् अपने २ केन्द्रमें एक समान परिणाम होने पर भी परिणाम स्वभाव होनेसे सत्त्वकी सत्त्वरूपसे रजकी रजोरूपसे तथा तमकी तमोरूपसे प्रलयावस्थामें भी प्रवृत्ति हुआ करती है, और विसदृश परिणाम होना ही सृष्टि है. परन्तु सृष्टिके समय मिलकर ये तीनों गुण महदादि कार्योंको पैदा करते हैं जिसमें एक गुणकी प्रधानता तथा बाकी दो गुणोंमें अप्रधानता रहती है जो बिना विषम परिणामके नहीं हो सकती। उपमर्द्योपमर्दक भावसे होनेवाली इस अनेक प्रकारकी गुणोंकी प्रवृत्तिसे ही सुख-दुःख मोहादि भेदसे अनेक प्रकारके संसारमें विचित्र कार्य देखने में आते हैं।

प्रश्न—इन एक रूप गुणोंकी अनेक प्रकारसे विचित्र प्रवृत्ति क्यों होती है?

उत्तर—जैसे एक मधुर रसवाला वर्षा का पानी भिन्न २ देशकी पृथ्वी पर पड़कर बेल, जामुन, नारङ्गी, नीबू इत्यादि फलोंके पेड़ोंकी जड़से जाकर फलोंमें खट्टा, मीठा, कड़ुवा इत्यादि विचित्र रसोंको पैदा करता है, उसी तरह तीनों गुणोंमें पूर्वोक्त गुणप्रधान भावके कारण एक २ गुणकी प्रधानतासे सुखादिरूप विचित्र भिन्न २ प्रवृत्ति होती है ॥ १६ ॥

प्रधाने प्रमाणमुक्त्वा पुरुषे प्रमाणमाह—

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात् ।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ १७ ॥

सङ्घातेति। पञ्चम्यन्तपञ्चहेतूनां पुरुषोऽस्तीत्यनेनान्वयः,। सङ्घातः पृथिव्यन्तसमूहस्तस्य शय्यादिवत् परार्थत्वात् परप्रयोजनार्थत्वात्, प्रयोजनं च सुखदुःखान्यतरसाक्षात्काररूपो भोगः, तस्य च जडे बाधाच्चेतनस्तद्वान् पुरुषोऽस्ति, युक्तिप्रमाणादिति (१) भावः। हेत्वन्तरमाह त्रिगुणादिविपर्ययादिति। त्रयो गुणा यस्यादिरसौ त्रिगुणादिस्तस्य त्रिगुणादे(२) विपर्ययोऽभावस्तस्मात्, त्रिगुणतत्कार्यस्य जडत्वात् कार्यविशेषे(३)ऽकारणत्वाच्च किञ्चिन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वं घटादेरिवावश्यकम्, सर्वस्य त्रिगुणस्याभावस्त्वत्रिगुणे पुरुष एव सम्भवति, अतिस्त्रगुणा-

---

(१) पृथिव्यादयः परार्थाः संघातत्वाच्छय्यादिवदित्यनुमानप्रमाणसत्त्वादित्यभिप्रायः। (२) बुद्ध्यादिप्रपञ्चस्य। (३) जलानयनादिरूपे कार्यविशेषे घटस्य करणत्वं नान्यत्र।

भावाधिकरणत्वेन पुरुष आवश्यक इति भावः। हेत्वन्तरमाह अधिष्ठानादिति। अधिष्ठातृत्वादित्यर्थः। यथा रथः सारथिनाधिष्ठितः प्रवर्तते तद्वदिदमपि सर्वं जडत्वात् पुरुषाधिष्ठितमेव प्रवर्तत इत्यकामेनाप्यवश्यं वाच्यम्, अतस्त्रिगुणाधिष्ठातृतया पुरुषोऽस्तीति भावः। हेत्वन्तरमाह भोक्तृभावादिति। साक्षित्वादित्यर्थः, यस्येदं व्यक्ताव्यक्तं षड्रसादिवदनुभवनीयं स पुरुष आवश्यक इति भावः (१)। हेत्वन्तरमाह कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्चेति। शिष्टा मुक्तौ प्रवर्तमाना दृश्यन्ते, मुक्तिश्च प्रकृत्यादिषु मध्ये न कस्यचिदपि सम्भवति त्रिगुणत्वेन सुखदुःखमोहात्मकत्वात्, तस्मान्मुमुक्षुप्रवृत्त्युद्देश्यमोक्षाश्रयत्वेन पुरुषसिद्धिरिति सङ्क्षेपः ॥१७॥

हिंदी—प्रश्न—पुरुष—आत्माकी सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर—'जो २ सुख-दुःख मोह रूप होता है वह दूसरेके लिये होता है जैसे शय्या, आसन, स्नान इत्यादि कार्य सुखादि रूप होनेसे दूसरे मनुष्योंके लिये होते हैं' इस व्याप्तिज्ञानसे अनुमान किया जाता है कि सुख दुःख मोहात्मक प्रधान महदादि सभी अव्यक्त तथा व्यक्त पर (दूसरे) के लिये हैं, वही पर पुरुष है, अर्थात् सुख-दुःखादिरूप पदार्थोंका सुख-दुःखादिरूप भोग जड़ पदार्थोंको न हो सकनेसे चेतन आत्मा मानना आवश्यक है। पूर्वोक्त त्रिगुणत्व अविवेकित्वादि धर्मोंका विपर्यास होनेसे भी असंघात—सुखाद्यनात्मक परपुरुष चेतन सिद्ध होता है, यदि उस पुरुषको भी संघातरूप माना जाय तो वह भी किसी दूसरे सङ्घात पदार्थके लिये होनेसे अनवस्था दोष आ जायगा, व्यवस्था हो सकते अव्यवस्था मानना ठीक नहीं है, इसलिये त्रिगुण तथा उनसे कार्योंके जड़ होनेसे आत्मामें त्रिगुणत्वादि धर्मों का अभाव होनेके कारण चेतन पुरुषकी सिद्धि होती है। इसी प्रकार जिस तरह रथ बिना सारथिकी प्रेरणासे नहीं चल सकता उसी तरह शरीरादि जड़ पदार्थोंमें भी बिना चेतनके अधिष्ठानके चलना-फिरना इत्यादि कार्योंमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये त्रिगुणोंका अधिष्ठाता पुरुष है यह सिद्ध होता है। एवं भोक्तृभावसे भी पुरुषकी सिद्धि होती है, षड्रसादिकोंके समान जो व्यक्ताव्यक्त रूप व भोग्य पदार्थोंका भोग करता है वह पुरुष आवश्यक है क्योंकि भोक्ताके बिना भोग्य पदार्थोंका सुख—दुःखात्मक भोग हो नहीं सकता, अथवा बुद्ध्यादिक

(१) त्रिगुणाविवेकित्वादिपूर्वोक्तधर्माः संहतत्वव्याप्ताः, आत्मनि संहतत्वं निवर्तमानं त्रिगुणत्वादि निवर्तयति, तथा चात्माऽत्रिगुणः संहतत्वाभावादित्यनुमानेनाप्यात्मसिद्धिरित्यन्ये।

दृश्य पदार्थोंमें द्रष्टाके बिना दृश्यता नहीं आ सकती इसलिये द्रष्टा आत्मा मानना आवश्यक है। इसी प्रकार शिष्ट पुरुषोंकी मुक्तिके लिये प्रवृत्ति होती है, यह देखनेमें आता है, वह मुक्ति त्रिगुण होनेसे सुख-दुःखात्मक प्रकृत्यादि पदार्थोंको नहीं हो सकती इसलिये मुमुक्षु जनोंके प्रवृत्तिके उद्देश्य रूप मुक्तिका आधार अत्रिगुण चेतन पुरुषको मानना आवश्यक है ॥ १७ ॥

तदेवं पुरुषास्तित्वं प्रतिपाद्य तस्य बहुत्वं प्रतिपादयति—

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत प्रवृत्तेश्च ।
पुरुषवहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥ १८ ॥

जन्ममरणेति। पुरुषवहुत्वं सिद्धम्, कस्मात्? जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमात् आत्मनि देहसम्बन्धो जन्म, तत्त्याग एव मरणं, करणानि चक्षुरादीनि एषां प्रतिनियमः प्रत्येकमेव दर्शनं (१)।तस्मात्, आत्मन एकत्वे तन्न स्यात्, एकस्मिन् जाते मृते वा सर्वे एव जाता मृता वा स्युः, एकस्मिन् सचक्षुषि सर्वे एव सचक्षुषः स्युः, एकेन दृष्टे सर्वे द्रष्टारः स्युः, न च तथा, तस्माद्बहवः पुरुषा इति भावः। हेत्वन्तरमाह अयुगपत् प्रवृत्तेश्चेति। एकस्य धर्मेऽन्यस्य ज्ञानेऽन्यस्य वैराग्येऽन्यस्यैश्वर्येऽन्यस्य कामादावित्येवं प्रवृत्तिभेदादित्यर्थः, आत्मन एकत्वे सर्वेषामेकस्मिन्नेवार्थे युगपत प्रवृत्तिः स्यात्, न च तथा, तस्मादपि बहवः पुरुषा इति भावः। हेत्वन्तरमाह त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैवेति। एवकारोऽत्र भिन्नक्रमः सिद्धमित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः, सिद्धमेव नासिद्धम्, त्रयो गुणास्त्रैगुण्यं तस्य विपर्ययः परिणामभेदः-क्वचित् सुखमेव क्वचिद्दुःखमेव क्वचिन्मोह एवेत्यविधस्तस्मात्, यद्वा त्रैगुण्येन विपर्ययो भेदः सात्त्विकराजसतामसभेदेन पुरुषस्य तस्मात्, एकत्वपक्षे तु तन्न स्यात्, किन्तु सर्वे सुखिनो दुःखिनो वा स्युः, एवं त्रिगुणभेदेन नीचोत्तम-मध्यमव्यवस्थापि न स्यात्। नचान्तःकरणभेदात् तथेति वाच्यम्। अन्तःकरणभेदे पुरुषभेदस्यैव वीजत्वात्, अन्यथा (२) तद्भेदस्याप्रमाणिकत्वादिति भावः ॥१८॥

हिंदी प्रश्न—आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है या एक?

उत्तर—आत्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न है क्योंकि आत्मामें नये २ शरीरके

---

(१) व्यवस्थेत्यर्थः। व्यवस्थानङ्गीकारे बाधकमाह आत्मन इति। (२) अन्तःकरणभेदस्य।

सम्बन्ध रूप जन्म तथा उसका त्यागरूप मरण और चक्षु, श्रोत्र आदि करणोंकी व्यवस्था देखनेमें आती है, यदि सभी शरीरमें आत्मा एक माना जाय तो एकके पैदा होते सब पैदा हों, एकके मरनेसे सब लोग मर जायं तथा एकके अन्धे या बहिरे होते ही सभी लोग अन्धे तथा बहिरे हो जायं ऐसी अव्यवस्था हो जायगी इसलिये अनेक पुरुष मानना आवश्यक है। और यदि आत्मा सब शरीरमें एक ही हो तो एक पुरुषकी धर्ममें प्रवृत्ति होनेसे सारे संसार के मनुष्य एकदम धर्म ही में प्रवृत्त होने लगेंगे, ऐसा नहीं होता, क्योंकि कोई धर्ममें प्रवृत्त है तो कोई अधर्ममें कोई ज्ञानमें तो कोई अज्ञान में, इस प्रकार संसारके प्राणियोंकी प्रवृत्ति अलग २ देखनेमें आती है। इसी तरह सत्त्व, रज तम इन तीनों गुणोंके विपर्यय–परिणाम-भेदसे भी आत्माकी अनेकता ही सिद्ध होती है, क्योंकि कहीं २ केवल सुख ही (जैसे देवताओंमें) कहीं २ केवल दुःख ही (जैसे मनुष्योंमें) कहीं २ मोह जैसे नारकीय जीवोंमें पाया जाता है। अथवा त्रिगुण होने से आत्माओंका सात्विक–राजस तथा तामस भेद होता है इसलिये आत्मा अनेक हैं यह मानना आवश्यक है, यदि एक मानें तो एक पुरुषके सुखी या दुखी होने पर सभी संसारी जीव सुखी या दुखी हो जायंगें, और त्रिगुणोंके भेद से नीच, ऊँच, मध्यम इत्यादि व्यवस्था भी नहीं बनेगी ॥ १८ ॥

एवं पुरुषबहुत्वं प्रसाध्य विवेकज्ञानोपयोगितया तस्य धर्मानाह—

तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥ १९ ॥

तस्मादिति । त्रिगुणादेर्यो विपर्यासोऽत्रिगुणत्वं विवेकित्वमविषयत्वमसाधारणत्वं चेतनत्वमप्रसवधर्मित्वं च तस्मात्, तत्र चेतनत्वाद्द्रष्टृत्वं(१)स्वप्रकृतिशीलज्ञातृत्वं–प्रकृतिर्मम संसारं कारयति न त्वहं संसारवान् किन्तु पुष्करपलाशवन्निर्लिप्त–इति धीमत्त्वम् अत्रैगुण्यात् कैवल्यमात्यन्तिकदुःखशून्यत्वम्, तथा माध्यस्थ्यमुपकारापकारशक्तिरहितत्वम्, अकर्तृभावोऽकर्तृत्वमिच्छाद्वेषप्रयत्नादिशून्यत्वम् अतएव साक्षित्वं ज्ञानैकस्वरूपत्वम्(२), कर्तृत्वादिमत्त्वे तद्वभासक(३)ज्ञानैक-

(१) चेतनो हि द्रष्टा भवति नाचेतनः। (२) चेतनत्वात् साक्षित्वं, विवेकित्वादप्रसवधर्मित्वाच्चाकर्तृत्वमिति मिश्राः। (३)कर्तृत्वाद्यवभासकेत्यर्थः।

रूपो न स्यात्, तद्धर्मशून्यस्यैव (१) दीपस्य घटादौ तदवभासकत्वदर्शनात्, इति संक्षेपः ॥ १९ ॥

हिंदी—प्रश्न—विवेकज्ञानमें उपयोगी आत्माके धर्म क्या है?

उत्तर—पूर्वोक्त त्रिगुणत्वादि धर्मोंके विपर्ययरूप अत्रिगुणत्व–अविवेकित्व–अविषयत्व–असाधारणत्व–चेतनत्व तथा–अप्रसवधर्मित्व इन धर्मोंसे आत्मामें अग्रिम साक्षित्वादि धर्मोंकी सिद्धि होती है। जिनमेंसे चेतनता से आत्मामें साक्षिता और द्रष्टृता सिद्ध होती है, क्योंकि चेतन ही देखने वाला होता है न कि जड़, और साक्षी–(गवाह) ही को विषय देखाये जाते हैं, जिसे विवादादि विषय दिखाया––(समझाया) जाता है वह साक्षी होता है, जैसे–लोकव्यवहारमें वादी तथा प्रतिवादी दोनों अपने २ झगड़ेके विषयको गवाहके सामने रखते हैं, उसी तरह प्रकृति भी अपने चरित्र रूप विषय को सामने रखती है। इसलिये पुरुष भी साक्षी होता है। जड़ पदार्थ या विषयको विषय नहीं दिखाया जाता इसलिये चेतन होनेसे तथा अविषय होनेसे पुरुष साक्षी है, और इसलिये द्रष्टा देखने वाला भी है। इसी प्रकार अत्रिगुण होनेसे आत्मा हीमें दुःखत्रयाभाव रूप कैवल्य स्वाभाविक सुखदुःखमोहाभावका कारण सिद्ध होता है। एवं अत्रिगुण होनेसे वह मध्यस्थ है यह भी सिद्ध होता है, क्योंकि सुखी सुखसे सन्तुष्ट होता हुआ तथा दुखी दुःखसे वुराई करता हुआ मध्यस्थ नहीं हो सकता इसलिये उन दोनोंसे रहित आत्मा ही मध्यस्थ या उदासीन कहा जाता है। इसी प्रकार विवेकी और अप्रसवधर्मी होनेसे आत्मामें कर्तृत्वादि गुण नहीं हैं यह भी सिद्ध होता है ॥ १९ ॥

ननु कृतिर्बुद्धितत्त्वनिष्ठा चैतन्यमात्मनिष्ठं तर्हि जानाम्यहमिदं करोमीति कृतिचैतन्ययोः सामानाधिकरण्यप्रतीतिस्तत्राह—

तस्मात् तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः ॥ २० ॥

तस्मादिति। यतश्चैतन्यकर्तृत्वे भिन्नाधिकरणके युक्तितः सिद्धे तस्माद्भ्रान्तिरिय (२) मित्यर्थः, भ्रान्तिवीजं तत्संयोगः। तत्संयोगादिति। तस्य पुरुषस्य

(१) कर्तृत्वादिधर्मशून्यस्य दृष्यधर्मशून्यस्यैव दृश्यधर्मावभासकत्वं दृश्यते।
(२) प्रदर्शितसामानाधिकरण्यप्रतीतिः।

संयोगः सन्निधानं प्रतिविम्बवत्त्वं, तस्मादचेतनमपि लिङ्गं बुद्धितत्त्वं चेतनादिव जानामीति ज्ञानवदिव भवति । एवं गुणकर्तृत्वे—गुणाः सुखदुःखमोहरूपाः (१), कर्तृत्वं च तथा बुद्धिनिष्ठमात्मनि प्रतिविम्बितं भवति, तेनोदासीनोऽपि पुरुषः करोमीति कर्तेव भवति, अतोऽहं जानाम्यहमिदं करोमीति प्रत्ययो धर्मिणोर्भेदाग्रहाद्विनिमयेन (२) धर्मसंसर्गग्रहरूपो भ्रम एव, तयोस्तथात्वनिश्चयात् इति सङ्क्षेपः ॥ २० ॥

हिंदी—प्रश्न—सांख्यमतसे कृतिको बुद्धितत्त्वका धर्म और चेतनता आत्मामें मानें तो 'मैं जानता हुआ यह कार्य करता हूं' इस प्रतीति से प्राणिमात्रके अनुभवसे सिद्ध कृति तथा चैतन्य इन दोनों धर्मोंकी एकाधारता कैसे बनेगी ?

उत्तर—जब पूर्वोक्त रीतिसे उक्त दोनों धर्म भिन्न २ आश्रयमें सिद्ध हो चुके तब 'मैं करता हूं' यह प्रतीति भ्रमसे होती है, जिस भ्रमका कारण है पुरुष तथा प्रकृतिका संयोग, अर्थात् दोनोंका सन्निधान, इस प्रकृति तथा पुरुष के विम्बप्रतिविम्बभाव हीसे जड़ भी लिङ्ग—महदादि सूक्ष्मान्त या बुद्धतत्त्व चेतन के ऐसा प्रतीत होता है जिससे कृतिके आधार—प्रकृतिमें 'मैं यह प्रतीति होती है', और सत्त्व, रज, तमोगुणात्मक प्रकृतिमें ही वास्तविक कर्तृत्व रहने पर भी प्रकृति तथा पुरुषके सन्निधान हीसे 'मैं करता हूं' ऐसी उदासीन—आत्मामें प्रतीति होती है ॥ २० ॥

किमर्थं तयोः संयोगस्तत्राह—

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥ २१ ॥

पुरुषस्येति । पुरुषस्य प्रधानस्य चोभयोरपि संयोगो दर्शनार्थं कैवल्यार्थं चेत्यन्वयः, दर्शनं भोगः प्रधानस्य पुरुषेण, कैवल्यं मोक्षः सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिनिबन्धनः (३) पुरुषस्य, प्रधानेन विनाऽसम्भवात् तयोः प्रधानपुरुषयोर्द्वयोः संयोगो भोक्तृभोग्यभावकरं सन्निधानं भवतीत्यर्थः । उभयस्य कार्ये उभयस्यैवापेक्षेत्यत्र दृष्टान्तः—पङ्ग्वन्धवदिति । यथा पङ्ग्वन्धयोरेकत्र मेलने पङ्गुरन्धस्य

(१) तेषां कर्तृत्वसत्त्वेऽपीत्यत्र पूरणीयम् । (२) परस्परधर्मपरिवृत्त्या ।
(३) सत्त्वाद् बुद्धेः पुरुषस्यान्यताख्यातिर्भेदस्तन्निबन्धनो भेदप्रयुक्तो मोक्षः ।

मार्गप्रदर्शनायान्धश्च पङ्गोर्नयनाय भवति तद्वदित्यर्थः । भोगापवर्गयोर्द्वारभूतः सर्गोऽपि संयोगादेवेत्याह तत्कृत इति । महदादिलक्षणः सर्गः संयोगजन्य एवेत्यर्थः, अत एव प्रलये न सर्गः तयोस्तादृशसंयोगाभावादिति भावः ॥ २१ ॥

हिंदी—प्रश्न—इन दोनों का संयोग क्यों होता है ?

उत्तर—पुरुष और प्रधान इन दोनों का संयोग दर्शन तथा कैवल्यके लिये होता है, अर्थात् भोग्य प्रधानके भोगात्मक दर्शनके लिये भोक्ता आत्माकी आवश्यकता है, तथा भोग्य प्रधानके साथ मिलकर आत्मा प्रधानके दुःखादि परिणामोंको अपनेमें मानता हुआ कैवल्य की प्रार्थना करता है, और वह प्रकृति पुरुष भेदज्ञान रूप कैवल्य मुक्ति बिना प्रधानके नहीं हो सकती, इसलिये पुरुषको प्रधानकी आवश्यकता है । इस प्रकार दोनोंके कार्यमें दोनोंकी आवश्यकता होनेमें एक पंगु तथा एक अन्धेका दृष्टान्त है, कि जैसे बिना लंगड़ेके रास्ता नहीं दिखाई पड़ सकता, इसलिये अन्धेको लंगड़ेकी, और बिना अन्धेके रास्ता चलना कठिन होनेसे लंगड़ेको अन्धेकी आवश्यकता है, इसी तरह प्रकृति तथा पुरुष इन दोनोंके कार्य बिना दोनोंके संयोग के नहीं हो सकते । उक्त भोग तथा अपवर्ग रूप दोनों कार्य भी प्रकृति तथा पुरुषके संयोगसे उत्पन्न सृष्टिके बिना नहीं हो सकते इसलिये भोग तथा अपवर्गके लिये ही प्रकृति पुरुष संयोगसे महदादि सृष्टि होती है ॥ २१ ॥

सर्गक्रममाह—

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥ २२ ॥

प्रकृतेरिति । अत्रेयं प्रक्रिया—एकं प्रकृतितः किञ्चिन्न्यूनपरिमाणं महत्तत्त्वमंशांशिभावापन्नं जायते, तत्रांशा बुद्धितत्त्वाख्या आत्मसमसंख्याः शरीरप्रवेशार्हपरिमाणका जीवभोगाय भवन्ति, तेषामापूरिका प्रकृतिरेव, एवमहङ्कारो महत्त्वादल्पपरिमाणोंऽशांशिभावापन्नो भवति, तत्रांशाः सूक्ष्मा आत्मसमसंख्यास्तथैव तद्भोगाय भवन्ति, षोडशको गणस्तु—एकादशेन्द्रियाणि वक्ष्यमाणानि शब्दादीनि पञ्च तन्मात्राणि च, तस्मादपि (१) षोडशकात् तं षोडशकं प्राप्य स्थितेभ्यः पञ्चभ्यस्तन्मात्रेभ्यः पञ्च महाभूतानि भवन्ति । तत्र शब्दतन्मात्रादाकाशं तस्य

(१) ल्यब्लोपे पञ्चमी ।

शब्दोगुणः, शब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दस्पर्शगुणवान्, शब्दस्पर्शतन्मात्रसहिताद्रूपतन्मात्रात् तेजः शब्दस्पर्शरूपगुणकम्, शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रसहिताद्रसतन्मात्राज्जलं शब्दस्पर्शरूपरसगुणम्, शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहिताद्गन्धतन्मात्रात् पृथ्वी शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणेति । अत्र संग्रहः—

वियदेकगुणं प्रोक्तं द्वे गुणौ मातरिश्वनः ।
त्रयस्तेजसि चत्वारः सलिले पञ्च भूमिगाः ॥ इति ।

(१) महङ्कारादेव पञ्च महाभूतानि भवन्त्विति तु न वक्तुं शक्यम, शब्दादिगुणकानां तेषामहङ्कारत उत्पत्तेरसम्भवात्, अहङ्कारस्य शब्दाद्यभवात्, न चाहङ्कारस्य पञ्चगुणवत्त्वे मानमस्ति, तथासत्याकाशादीनां पञ्चानामेव पञ्चगुणवत्त्वं स्यात्, (२)एवं बाह्येन्द्रियग्राह्यगुणवत्त्वस्यैव भूतत्वेन तस्यापि भूततापत्तौ स्वस्य स्वकारणत्वानुपपत्त्या तस्य(३) भूतकारणत्वश्रुतिविरोधश्च स्यात् । न चाहङ्कारस्य शब्दाद्यभावे कथं तस्माच्छब्दादितन्मात्रोत्पत्तिरिति वाच्यम् । हरिद्रादीनां चूर्णादिसंयोगेन तदुभयारब्धे रक्तरूपवन्महदहङ्कारादिसंयोगेन(४)शब्दतन्मात्राद्युत्पत्ति-सम्भवात् । न च स्थूलानामप्येव(५)महङ्कारादुत्पत्तिर्वक्तुं शक्येति वाच्यम् । स्वविशेषगुणवद्द्रव्योपादानकत्वव्याप्येन (६)स्थूलत्वेन परिशेषात् सूक्ष्मद्रव्यारब्धत्वानुमानादहङ्कारोपादानकत्वनिरासात् इत्याद्यन्यत्र विस्तरः । तन्मात्रत्वं च यज्जातीयेषु (७) शान्तघोरमूढाख्यविशेषत्रयं न तिष्ठति तज्जातीयतदनाश्रय (८) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्रयसूक्ष्मद्रव्यत्वम्, (९) शान्तं सुखात्मकम्, घोरं दुःखा-

---

(१) शङ्कते अहङ्कारादेवेति । समाधत्ते शब्दादीति । (२) दोषान्तरमाहैवमिति । (३) अहङ्कारस्य । (४) तथाच शब्दाद्यभावेप्यहङ्कारात्संयोगविशेषनिबन्धना शब्दतन्मात्राद्युत्पत्तिरिति भावः । (५)एवमुक्तरीत्या संयोगविशेषनिबन्धनेति यावत् । (६) स्वस्मात् कार्याद्विशेषगुणो विद्यते यस्मिन् द्रव्ये तत् स्वविशेषगुणवद्द्रव्यं तदेवोपादानं यस्य तत् स्वविशेषगुणवद्द्रव्योपादानकं तस्य भावः स्वविशेषगुणवद्द्रव्योपादानकत्वं तेन व्याप्यं स्वविशेषगुणवद्द्रव्योपादानकत्वं तेन । स्थूलत्वं व्याप्यं स्वविशेषगुणवद्द्रव्योपादानकत्वं च व्यापकम्—यत्र स्थूलत्वं तत्र स्वविशेषगुणवद्द्रव्योपादानकत्वम्, स्वशब्देन महाभूतानि तत्र यो विशेषगुणः शब्दादिस्तद्वद् यद् द्रव्यं तदुपादानं यस्य तत् तस्य भावस्तत्त्वम् । (७) शब्दत्वादिजातीयेषु। (८) शान्ताद्यनाश्रयेत्यर्थः । (९) शान्तादिः

त्मकम्, मूढं मोहात्मकम्, तन्मात्राणि च देवादियोग्यत्वेन केवलं सुखात्मकान्येव सुखाधिक्यात् । सूक्ष्मत्वात् त्वयोग्यतया तेषामस्मदाद्यग्राह्यत्वमिति तत्त्वम् ॥२२॥

हिन्दी—प्रश्न—वह महदादि सृष्टिक्रम किस प्रकार है ?

उत्तर—सत्त्व-रज-तमो गुणात्मक प्रकृतिरूप मूल कारणसे महतत्त्व (बुद्धि) और उससे अहङ्कार आविर्भूत होता है, इन दोनों का लक्षण आगे कहेंगे। और उस अहङ्कार (अभिमान) से ग्यारह इन्द्रिय तथा पांच सूक्ष्म तन्मात्रायें ऐसे सोलह पदार्थों का समूह पैदा होता है। और इन सोलहमें से पांच सूक्ष्म तन्मात्राओंसे पृथिव्यादि पांच महाभूत पैदा होते हैं। जिनमें केवल शब्द तन्मात्रासे शब्द गुणवाला आकाश, शब्द तन्मात्रा सहित स्पर्श तन्मात्रासे शब्द तथा स्पर्श गुणवाला वायु, शब्दस्पर्श तन्मात्रा सहित रूपतन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप गुणवाला तेज, शब्दस्पर्शरूप तन्मात्रा सहित रस तन्मात्रासे शब्द स्पर्श रूप रस गुणोंका आधार जल और शब्द स्पर्श रूप रस तन्मात्रा सहित गन्ध तन्मात्रासे शब्द स्पर्श रूप रस गन्धवाली पृथिवी पैदा होती है ॥ २२ ॥

बुद्धे र्लक्षणमाह—

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम् ।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमेतद्विपर्यस्तम् ॥ २३ ॥

अध्यवसायो बुद्धिरिति। अध्यवसायो मयेदं कर्तव्यमित्याकारनिश्चयो दीपशिखेव बुद्धिपरिणामो (१) ऽवस्थाविशेषः, परिणामपरिणामिनोरभेदादभेदप्रयोगः (२)। चैतन्यस्य (३) सदैकस्वभावस्य विषयावभासवैचित्र्यायेन्द्रियाणां व्यासङ्गोपपत्तये मनसो, मदिष्ठसाधनत्वबुद्धौ (४) मदंशमानायाहंकारस्य कृत्यसाध्येवृष्टयादौ प्रवृत्तिवारकस्याकर्तव्यत्वाध्यवसायस्य सम्भवाय बुद्धिस्तत्त्वस्यावश्यकत्वमिति स्वयमूह्यम्। बुद्धिधर्मानाह—धर्मो ज्ञानमिति। धर्मो गङ्गास्नानादि-

---

विशेषं निर्वक्ति शान्तमिति। तन्मात्रेषु उक्तविशेषत्रयाभावे युक्तिमाह तन्मात्राणीति। (१) यथा दीपशिखा क्षणे क्षणे परिणमति, एवं बुद्धेः परिणामः। (२) अध्यवसायो बुद्धिरिति अभेदप्रयोग इत्यर्थः। (३) चैतन्यस्य विषयाणामवभासो ज्ञानं तस्य वैचित्र्यायेन्द्रियाणामावश्यकत्वम्, मनसो व्यासङ्गोपपत्तये आवश्यकत्वम् एवमग्रेऽपि योज्यम्। (४)ममेदमिष्टमितीष्टसाधनत्वज्ञाने मदंशावभासायाहंकारस्य,

जन्योऽष्टाङ्गयोगजन्यश्च । ज्ञानमात्मसाक्षात्कारः । विरागो वैराग्यम्, तच्चतुर्विधं यतमानव्यतिरेकेन्द्रियवशीकारसंज्ञाभेदात्, तत्र रागादिकषायपाचनार्थं निवृत्तिधर्मारम्भो यतमानम् पक्वापक्वानां दोषाणामभ्यस्यमानविवेकबलेन चिकित्सकवद्भेदकरणं व्यतिरेकः पक्वसर्वकषायज्ञानेन चित्तोत्सुकता(१) एकेन्द्रियम्, सर्वविषयतृष्णाराहित्येनौत्सुक्यस्यापि निवृत्तिर्वशीकाराख्यम् (२) । ऐश्वर्यमिति । तदष्टविधम्, तदुक्तम्—

अणिमा[1] महिमा[2] मूर्तेर्लघिमा[3] प्राप्तिरिन्द्रियैः[4] ।
प्राकाम्यं[5] श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता[6] ॥
गुणेष्वसङ्गो[7] वशिता यत्कामस्तद[8]वस्यति । इति ।

(३) मूर्तेः=शरीरस्य, अणिमा=अणुत्वम्, महिमा=योजनादिव्यापित्वम्, लघिमा=तूलादिवल्लघुत्वम्, भूमिष्ठ एवांगुल्यग्रेण चन्द्रमसं स्पृशतीत्यादिरूपसामर्थ्यमिन्द्रियैः प्राप्तिरित्युच्यते, श्रुतदृष्टेषु प्राकाम्यमिच्छानभिघातः, यथा भूमौ जलेष्विव निमज्जतीत्यादि, ईशिता तु भूतभौतिकानां सर्वेषां संकल्पमात्रेण प्रेरणम्, वशिता=गुणभूताद्यनधीनता, सत्यसंकल्पता यत्कामस्तदवस्यति तत् प्राप्नोतीत्यनेनोक्तम् । (४) एतद्विपर्यस्तम्=एतद्विपरीतम् अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्चर्यरूपम् । तत्राधर्मः परस्त्रीसङ्गादिजन्यः । अज्ञानमनित्ये गृहक्षेत्रादौ नित्यबुद्धिः, अशुचौ स्त्रीकायादौ शुचिबुद्धिः, दुःखे संसारे सुखबुद्धिः, अनात्मनि देहादावात्मबुद्धिर्गौरोऽहमित्यादिका । अवैराग्यं विषयतृष्णा । अनैश्वर्यं (५) स्वाभिप्रेतविपरीतम् ॥ २३ ॥

इनमें प्रकृति (अव्यक्त) का सामान्य तथा विशेष लक्षण १०–१३ कारिकामें कह चुके हैं, इसलिये क्रमप्राप्त प्रथम व्यक्त–महत्तत्व का लक्षण करते हुए गुरुजी कहते हैं कि हे शिष्यों ! संसारमें व्यवहार करने वाले सभी लोग पहिले ज्ञानेन्द्रियोंसे पदार्थों का प्रत्यक्ष करनेके बाद 'यह ऐसा है ऐसा नहीं' इस प्रकार

कृत्यसाध्यवृष्ट्यादौ प्रवृत्तिं निर्वर्तयितुमकर्तव्यत्वाध्यवसायजननाय बुद्धेश्चावश्यकतेति भावः । (१) विषयाणां चित्ते केवलमुत्कण्ठा । (२) अत एवोक्तं योगसूत्रे–दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसञ्ज्ञा वैराग्यमिति । (३) सार्धकारिकां व्यचाष्टे मूर्तेरिति । (४) एवं सात्त्विकं चतुर्विधं बुद्धिधर्मं व्याख्यायता मसमाह एतदिति । (५) इच्छाविघात इत्यर्थः ।

मनसे संकल्प कर 'मैं इस कामका अधिकारी हूं' ऐसा अभिमान करनेके बाद 'मुझे यह अवश्य करना है' ऐसा निश्चय कर बाद उस काममें प्रवृत्त होते हैं। इन चार प्रकारके व्यापारोंमें से जो यह अन्तिम कर्तव्यता-निश्चय है यही बुद्धितत्त्वका विशेष धर्म होनेसे इतर-व्यावर्तक लक्षण हो सकता है। उस बुद्धितत्त्वके विवेक-ज्ञानमें उपयोगी सात्त्विक तथा तामस आठ धर्म हैं, जिन्हें सांख्यमतमें भाव कहा गया है। जिनमें धर्म-ज्ञान-वैराग्य तथा ऐश्वर्य ये चार सात्त्विक बुद्धि धर्म हैं। जिससे ऐहिक तथा पारलौकिक सुख तथा मुक्ति होती है उसे धर्म कहते हैं। प्रकृति तथा पुरुष के भेदज्ञान को ज्ञान माना गया है। यतमान-व्यतिरेक-एकेन्द्रिय-वशीकार ऐसे चार प्रकारके वैराग्य हैं, जिनसे ऐहिक तथा पारलौकिक सभी प्रकारके विषयोंसे मनुष्यका चित्त हट जाता है। ऐश्वर्य भी एक बुद्धिका ही धर्म है जिससे अणिमा-लघिमा-गरिमा-महिमा-प्राप्ति-प्राकाम्य-वशित्व-ईशित्व इस प्रकारके आठ ऐश्वर्योंका आविर्भाव योगीके समान ज्ञानीको भी होता है। इन्हीं चारों बुद्धिधर्मोंके विपरीत अधर्म-अज्ञान-अवैराग्य तथा अनैश्वर्य ये चार तामस बुद्धि धर्म कहे जाते हैं ॥ २३ ॥

अहंकारस्य लक्षणमाह—

अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः ।
ऐन्द्रिय एकादशकस्तन्मात्रापञ्चकश्चैव ॥ २४ ॥

अभिमानोऽहङ्कार इति। अभिमानोऽहमित्यन्तर्भाविन प्रत्ययोऽहमिमं जानामि करोमि मदिष्टसाधनमिदमत्राहमधिकृत इत्याद्याकारस्तस्य हेतुः, (१) कार्यकारणयोरभेदादभिमानोऽहंकारः, अहमित्यव्यपदेश्यं पुरुषमहमिति व्यपदेश्यं (२) करोतीति तादृशः, तन्निष्ठमहकारत्वं भेदाग्रहात् पुरुषेऽपि भासते न तु सोऽप्यहंकार इत्यभिप्रायः। तस्य कार्यभेदमाह तस्माद् द्विविध इति। तस्मादहंकारात् सर्गः, सृज्यत इति सर्गः प्रपञ्चः, षोडषकगुणरूप अवान्तरव्यूहभेदेन द्विप्रकारः, प्रवर्तते = उत्पद्यते। प्रकारद्वयमाह—ऐन्द्रिय इति। तत्र तस्मादहंकारादैन्द्रिय इन्द्रियजातीय एकादशको गणः, एकादशसङ्ख्याको व्यूहः, च पुनः, तन्मात्रापञ्च-

(१) तस्याभिमानस्य हेतुरहंकारः इत्यग्रेऽन्वेयः। ननु कार्यकारणयोः कथं सामानाधिकरण्यमत आह कार्येति। (२) व्यवहारयोग्यम्।

कस्तन्मात्राजातीयः(१)एवकारो गणान्तरव्यवच्छेदकः ॥ २४ ॥

हिंदी—प्रश्न—द्वितीय व्यक्त अहङ्कारका लक्षण क्या है ?

उत्तर—इन्द्रियों से प्रत्यक्ष करने के बाद मन से विचार कर 'इस काम में मेरा ही अधिकार है, यह सब मेरे ही लिये है, जो कुछ हूं सो मैं ही हूं इत्यादि रूपसे जो अभिमान प्राणिमात्र को होता है यही असाधारण धर्म होनेसे अहङ्कारका लक्षण है, इसीके अनुसार बुद्धि कर्त्तव्य का निश्चय करती है। इस अहङ्कार से प्रकाशरूप इन्द्रिय--समुदाय तथा जड़रूपपांच सूक्ष्म तन्मात्रायें ऐसे दो प्रकारके कार्य पैदा होते हैं ॥२४॥

ननु कथमेकस्मादहंकाराद् द्विविधः सर्गस्तत्राह—

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात् ।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् ॥ २५ ॥

सात्त्विक इति । प्रकाशलघिमभ्यामेकादशक इन्द्रियगणः सात्त्विकः उद्रिक्त(१) सत्त्वगुणकाद् वैकृताद् विकृतोऽयमहंकार इति सांख्याचार्यसंकेतविषयादहंकारात् प्रवर्तते । भूतादेस्तामसादुद्रिक्ततमोगुणकादहंकारात् तन्मात्रको गणः प्रवर्तते, कस्मात् ? यतः स तामसः, तामसगुणस्य समानजातीयकारणादेवोत्पत्तेरुचितत्वात् । ननु यदि सत्त्वतमोभ्यामेव कार्यं तदा रजसः किं प्रयोजनं तत्राह तैजसादुभयमिति । उत्कटरजोगुणका (२) दुभयम् गणद्वयं भवति, सत्त्वतमसोः स्वतोऽक्रियत्वेन रजःप्रेर्यत्वात् तदुभयकार्यं रजःकार्यमेव, अतो रजोगुणऽप्यावश्यक इति भावः । तत्रेन्द्रियजनकस्य वैकृतत्वकथनं लघुकार्यजनकत्वाभिप्रायकम् , तन्मात्रजनकस्य भूतादित्वकथनं तामसत्वमहाकार्यजनकत्वाद्यभिप्रायकम्, रजोगुणकस्य तैजसत्वकथनं सृष्टिसमर्थत्वाभिप्रायकम् इति बोध्यम् ॥ २५ ॥

हिंदी—प्रश्न—एक रूप अहङ्कारसे जड़ तथा प्रकाश रूप विरूद्ध कार्य कैसे पैदा होते हैं ?

उत्तर—एक अहङ्ककारके सात्त्विक-राजस-तामस ऐसे तीन भेद हैं जिनमेंसे सात्त्विक-प्रकाशरूप अहंकारसे प्रकाशरूप इन्द्रिय, तथा तामस-जड़रूप अहंकारसे

(१) पञ्चविध इत्यर्थः । (२) उद्रिक्तत्वमुत्कटत्वम् । (३) अत्राहंकारादिति विशेष्यं ज्ञेयम् ।

जड़ पञ्चतन्मात्रायें पैदा होती हैं, ऐसा माननेसे उक्त दोष नहीं आता ।

प्रश्न—जब सत्त्व तथा तमसे ही सारे जड़ तथा प्रकाशरूप कार्य पैदा होते हैं तो रजोगुण व्यर्थ हो जायगा ?

उत्तर—यद्यपि राजस अहंकारका कोई दूसरा कार्य नहीं है तो भी सत्त्व तथा तमोगुणके स्वयं क्रियारहित होने से सामर्थ्य होने पर भी वे अपने २ कार्यो को नहीं कर सकते इसलिये जब रजोगुण चञ्चल होनेसे सत्त्व तथा तमोगुणको चलाता है तब वे अपने २ कार्योंको करते हैं, अतः सत्त्व तथा तमोगुणमें क्रिया को पैदाकरनेके कारण राजस अहंकार भी उक्त दोनों जड़ प्रकाशरूप कार्योंके उत्पत्तिमें कारण है यह मानना आवश्यक है ॥ २५ ॥

एकादशेन्द्रियाणां मध्ये दश बाह्येन्द्रियाणि, तान्याह—

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि ।
वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यकर्मेन्द्रियाण्याहुः ॥ २६ ॥

बुद्धीन्द्रियाणीति । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा बुध्यन्त एतैरिति बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुरादीनि रूपाद्युपलब्धिहेतुत्वेन सिद्धा(१)न्यतीन्द्रियाणि तत्तन्दोलकाधिष्ठितानि । तत्र चक्षुः=चष्टेऽनेनेति व्युत्पत्त्या चक्षुःपदाभिधेयं नयनं, रूपादिषु मध्ये रूपस्यैव ग्राहकम्, श्रोत्रं=शृणोत्यनेनेति व्युत्पत्त्या श्रोत्रपदाभिधेयं कर्णविवरसञ्ज्ञकं शब्दादिषु मध्ये शब्दस्यैव ग्राहकम्, घ्राणं=जिघ्रत्यनेनेति व्युत्पत्त्या घ्राणपदाभिधेयं गन्धादिषु मध्ये गन्धस्यैव ग्राहकम्, रसनं=रसयत्यनेनेति व्युत्पत्त्या रसनपदाभिधेयं रसादिषु मध्ये रसस्यैव ग्राहकम्, त्वक् स्पर्शं=स्पृशत्यनेनेति व्युत्पत्त्या स्पर्शपदाभिधेयं त्वक्स्थानीयत्वात् त्वगिन्द्रिय सर्वशरीरव्यापि स्पर्शादिषु मध्ये स्पर्शस्यैव ग्राहकम् । तत्र (२) त्वक्चक्षुषी द्रव्यस्यापि ग्राहके, अन्यानि तु गुणमात्रग्राहकाणीति विवेकः । वागादीनि कर्म कुर्वन्तीति कर्मेन्द्रियाणि, तद्विषया वक्ष्यन्ते(३) । (४)एतेषां सर्वेषामिन्द्रियसञ्ज्ञा कुत इति चेत् । इम्पदेन विषयास्तान् प्रति द्रवन्तीति व्युत्पत्त्येति गृहाण । चक्षुरादीनां तत्तद्तगुणग्राहकत्वेन तत्तद्भूतारब्ध-

---

(१) रूपाद्युपलब्धिः सकरणिका क्रियात्वाच्छिदिक्रियावदित्यनुमानेन चक्षुरादीनि सिद्धयन्तीत्यर्थः । (२) चक्षुरादिज्ञानेन्द्रियपञ्चकमध्ये । (३) २८ कारिकायाम् । (४) शङ्कते एतेषामिति । समाधत्ते इम्पदेनेति ।

त्वानुमानं तु न साधीयोऽप्रयोजकत्वादिति(१) स्वयमूह्यम् ॥ २६ ॥

हिंदी—उक्त दोनों प्रकारके कार्योंमेंसे सात्त्विक अहंकारके कार्य-ग्यारह प्रकाशरूप इन्द्रियोंमेंसे बाह्य-बाहरके दस इन्द्रिय इस प्रकार हैं—चक्षु (आंख), श्रोत्र (कान), घ्राण (नाक), रसन (जीभ), त्वग् (शरीरका चमड़ा), ये पांच बाहरके विषयों के ग्रहण करनेके कारण बाह्य ज्ञानेन्द्रिय हैं। और वाक्-जीभ (बोलनेका इन्द्रिय), पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा), उपस्थ (शिश्न) ऐसे पांच बाहरके काम करनेके कारण बाह्य कर्मेन्द्रिय हैं। ये सब सात्त्विकाहंकारसे पैदा हुये हैं, इसलिये सात्त्विकाहंकारसे पैदा होना यही इन दसों बाह्येन्द्रियोंका सामान्य-लक्षण है। ये सब आत्मारूप राजाके चिह्न होनेसे इन्द्रिय कहलाते हैं। बाह्यन-रूप शब्द इत्यादि पांच गुणोंका ज्ञान विना चक्षु इत्यादि पांच इन्द्रियोंको माने नहीं हो सकता इसलिये ज्ञानेन्द्रियोंको मानना आवश्यक है। वाक् आदि कर्मेन्द्रियोंके साधक कार्योंको २८ वीं कारिकामें कहेंगे ॥ २६ ॥

एकादशमिन्द्रियं मनस्तल्लक्षणमाह—

उभयात्मकमत्र मनः सङ्कल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात् ।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च ॥ २७ ॥

उभयात्मकमिति। मनःसञ्ज्ञकमिन्द्रियं सङ्कल्पकम्—सामान्यत इन्द्रियेण गृहीतमर्थं सम्यक् कल्पयति विशेषणविशेष्यभावेन चेतयतीति विशिष्टधीजनकं कार्यकारणयोरभेदात् तदात्मकम्(२), अत एवोभयात्मकम्=बुद्धीन्द्रियसहकारित्वात् तदात्मकम्(३) कर्मेन्द्रियसहकारित्वात् कर्मेन्द्रियात्मकं च मनोऽधिष्ठानेनैव तेषां(४) स्वकार्यजननात्। ननु भवतु मनो महदहङ्कारवत् तत्तदिन्द्रियसहकारि, परन्तु तद्वदेव(५) नेन्द्रियं भवितुमर्हति तावन्मात्रेण(६) तस्येन्द्रियत्वेऽतिप्रसङ्गात् (७), तत्राह इन्द्रियं चेति। कुतः? साधर्म्यात्, इन्द्रियान्तरैः सात्त्विकाहङ्कारोपा-

(१) चक्षुरादीनि पृथिव्यादितत्तद्भूतारब्धानि तत्तद्गुणग्राहकत्वात् इत्याद्यनुमानं तत्तद्गुणग्राहकत्वमस्तु तत्तद्भूतारब्धत्वं मास्तु इत्यप्रयोजकत्वशङ्काग्रस्तत्वादसाधीय इत्यर्थः।

(२) सङ्कल्पधर्मवत्त्वेऽपि धर्मधर्मिणोरभेदात्सङ्कल्पात्मकमित्यर्थः। (३) बुद्धीन्द्रियकम्। (४) बुद्धिकर्मेन्द्रियाणाम्। (५) महदहङ्कारवदेव। (६) इन्द्रियसहकारित्वमात्रेण। (७) इन्द्रियसहकारित्वेन मनस इन्द्रियत्वं चेत् तर्हि इन्द्रियसहकारित्व-

दानत्वं साधर्म्यं तस्मात्, महदहङ्कारयोस्तु नेन्द्रियत्वं (१) तथात्वाभावादिति भावः। एतेन मनो नेन्द्रियं प्रत्यक्षत्वदिन्द्रियस्यातीन्द्रियत्वादिति वदतां केषाञ्चिन्मतमसम्यगिति ध्वनितम्, इन्द्रियलक्षणस्य स्वमते प्रकृतसाधर्म्यस्यातीन्द्रिय-(२)त्वविशेषणागर्भितत्वादित्यास्तां विस्तरः। ननु कथं सात्त्विकादहंकारादेकस्मादेकादशेन्द्रियाणि तत्राह गुणपरिणामेति। गुणानां सत्त्वादीनां यः परिणामविशेषोऽदृष्टविशेषादिरूपस्तस्मात्, तथा च सहकारिभेदात् कार्यभेद इति भावः। बाह्यभेदाश्चेति दृष्टान्तार्थम्, यथा बाह्यभेदास्तथैतदपीति भावः। ग्राह्यभेदाच्चेति पाठे तु ग्राह्यभेदादपीन्द्रियभेद आवश्यकको बोध्य इत्यर्थः॥ २७॥

प्रश्न—ग्यारहवें इन्द्रिय मनका लक्षण क्या है?

उत्तर—इन ग्यारह इन्द्रियोंमें मन नामका इन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों स्वरूप है, क्योंकि चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रिय तथा वागादि कर्मेन्द्रिय दोनोंकी मनके आधारहीसे अपने २ विषयमें प्रवृत्ति होती है। इस मनका लक्षण है—सङ्कल्प विकल्प करना। अर्थात् बाह्येन्द्रियोंसे पदार्थों का सामान्य रूपसे प्रत्यक्ष होनेके बाद 'यह ऐसा है ऐसा नहीं' इस प्रकार अच्छी तरहसे विशेषण-विशेष्यभावका विवेचन मन ही करता है इसलिये सङ्कल्प रूप विशेष धर्मसे मन भी 'एक उभयात्मक इन्द्रिय है' यह सिद्ध होता है।

प्रश्न—विशेष धर्म होनेसे मनको महत्तत्त्व तथा अहङ्कारके समान इन्द्रिय नहीं मानेगे?

उत्तर—सात्त्विकाहङ्कारका कार्य होनेसे इसे भी इन्द्रिय मानना आवश्यक है।

प्रश्न—एक प्रकारके सात्त्विकाहङ्कारसे ग्यारह इन्द्रियां कैसे हुईं?

उत्तर—शब्द रूप इत्यादि प्रत्यक्षसिद्ध विलक्षण गुणोंके भोगको देनेवाले विचित्र २ अदृष्ट (भाग्य) की सहायताके भेदसे इन्द्रियरूप कार्यमें विलक्षणता मानना आवश्यक है, अर्थात् जिस प्रकार सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंके वैषम्यके भेदसे बाह्यपदार्थोंमें भेद है इसी तरह उक्त गुणोंके परिणाम रूप अदृष्टविशेषसे इन्द्रियोंका भेद है, यह सिद्ध होता है॥ २७॥

मालोकादीनामपि भवतीति तेषामपीन्द्रियत्वं स्यात्। (१) सात्त्विकाहंकारोपदानस्वरूपसाधर्म्याभावात्। (२) प्रकृतसाधर्म्यस्य—सात्त्विकाहंकारोपादानत्वरूपसाधर्म्यस्य, अतीन्द्रियत्वे सति प्रकृतसाधर्म्यत्वमिन्द्रियत्वमिति लक्षणं न कृमं इत्य-

तत्र बाह्येन्द्रियविषयेषु ज्ञानेन्द्रियाणां व्यापारानाह—

रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः ।

वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च पञ्चानाम् ॥ २८ ॥

रूपादिष्विति । पञ्चानां = बुद्धीन्द्रियाणां चक्षूरसनघ्राणश्रोत्रत्वचां, रूपादिषु = रूपरसगन्धशब्दस्पर्शेषु, आलोचनं = निर्विकल्पकं = निर्विकल्पकं(१) वृत्तिः फलम्, मात्रपदादादानादिक्रियाव्यवच्छेदः तत्र चक्षुषो रूपे रसनाया रसे घ्राणस्य गन्धे श्रोत्रस्य शब्दे त्वचः स्पर्शे सामर्थ्यमिति विवेकः । कर्मेन्द्रियव्यापारमाह वचनेति । पञ्चानां = कर्मेन्द्रियाणां वचनादीनि कर्माणि व्यापारा इत्यर्थः । तत्र वचनम् = उच्यतेऽनेनेति कण्ठताल्वादिकर्म (२)वागिन्द्रियस्य, आदानं = ग्रहणं (३) हस्तस्य, विहरणं = गमनं पादयोः, उत्सर्गो = मलत्यागानुकूलं कर्म पायोः, आनन्दः = आनन्दयतीति व्युत्पत्त्या रतिरुपस्थस्य इति बोध्यम् ॥ २८ ॥

प्रश्न—दस बाह्येन्द्रियोंके विशेष व्यापार क्या हैं ?

उत्तर—चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियोंका अपने २ रूपादि विषयोंको सामान्य रूपसे जानना ही विशेष व्यापार है, और पांच वाग् इत्यादि कर्मेन्द्रियोंका क्रमसे बोलना-लेना-चलना-मलत्याग-तथा उपभोग अपना २ विशेष व्यापार है ॥ २८ ॥

बुद्धयहंकारमनसां वृत्तिमाह—

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या ।

सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥ २९ ॥

स्वालक्षण्यमिति । स्वमसाधारणं लक्षणं येषां तानि स्वलक्षणानि महदहंकारमनांसि तेषां भावः स्वालक्षण्यं वृत्तिर्व्यापारः, तत्र महतोऽध्यवसायः, अहंकारस्याभिमानः, मनसः सविकल्पकं संकल्पापरपर्यायं भेदकमित्यर्थः (४) । साधारणत्वासाधारणत्वाभ्यां वृत्तेर्द्वैविध्यमाह सैषेति । एषा = वृत्तिः, असामान्या = असाधारणी । सामान्यामाह सामान्येति । सामान्या चासौ करणवृत्तिश्चेति

भिप्रायः । (१) यदाहुः—सम्मुग्धं वस्तुमात्रन्तु प्राग्गृह्णन्त्यविकल्पितम् ।

(२) क्रिया व्यापार इति यावत् । (३) कर्मेत्यनेनान्वयः, एवमग्रे पि ।

(४) महत्तत्त्वं समानासमानजातीयभिन्नमध्यवसायवत्त्वादित्याद्यनुमानैरध्यव-

सामान्यकरणवृत्तिः, पञ्च प्राणाद्या वायवः—जीवनादिद्वारा सर्वकरणव्यापारबीजत्वात्, (१)तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् इन्द्रियव्यापारस्य च (२) तद्व्यापारान्वयानुविधायित्वात्। (३) प्राणदीनां भेदः स्थानभेदादुक्तो ग्रन्थेषु यथा—

हृदि प्राणो गुदेऽपानः ससानो नाभिदेशगः।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः॥

इत्यास्तां विस्तरः॥ २९॥

प्रश्न—बुद्धि अहङ्कार तथा मन इन तीन आंतर (भीतरी) कारणोंका विशेष व्यापार क्या है ?

उत्तर—बुद्धि अहङ्कार तथा मन इन तीन कारणोंके अपने २ पूर्वोक्त लक्षण जैसे—महत्तत्वका निश्चय करना, अहङ्कारका अभिमान तथा मनका सङ्कल्प करना ही विशेष व्यापार है। परंतु इन तीनों कारणोंके व्यापार दो प्रकारके हैं, एक असाधारण—(विशेष) दूसरा साधारण--(सामान्य), जिसमें विशेष व्यापार पहिले कह चुके हैं, प्राण-अपान-व्यान-उदान-तथा अपान इन पांच भीतरी वायुओंको ही अन्तःकरणत्रयका साधारण व्यापार कहते हैं, क्योंकि जीवनादिद्वारा यह पांच वायु सारे करणोंके व्यापारके बीज हैं॥ २९॥

असाधारणेषु व्यापारेषु यौगपद्यक्रमावाह—

युगपच्चतुष्टयस्य हि वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः॥ ३०॥

युगपदिति। दृष्टे = प्रत्यक्षविषये, तस्य = चतुष्टयस्य बाह्येन्द्रियमनोहंकारमहत्तत्त्वस्य युगपद्वृत्तिः क्रमशश्च भवति, तथाहि विद्युत्सम्पाते व्याघ्रादाविन्द्रियसन्निकर्षे युगपदेव निर्विकल्पकसविकल्पकाभिमानाध्यवसायाः प्रादुर्भवन्ति;

सायादीनामितरभेदकत्वमित्यभिप्रायः। (१) प्राणादिसत्त्वे जीवनादिसत्त्वं तदभावे तदभाव इत्यन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वादित्यर्थः। (२) प्राणादिव्यापारेत्यर्थः। (३) नन्वन्तःशरीरवृत्तेर्वायोरेकविधत्वात्कथं पञ्चत्वमत आह प्राणादीनामिति। इदमुपलक्षणमन्नादिना शरीरधारण—मलमूत्राद्यपनयन—नाडीषु रसादेस्समनयन—ऊर्ध्वनयन—सर्वशरीरव्यापित्वरूपव्यापारभेदादपि प्राणादिभेद इति।

अतस्ततो झटित्यपसरति । क्रमशश्च—यदा मन्दालोके प्रथमं किञ्चिदिदमिति जानाति पश्चादमुकमिति निश्चिनोति ततो मां प्रत्येतीत्यभिमन्यते अथाध्यवस्यति—अपसरामीतः स्थानात्, इत्येवं क्रमेण तेषामेते(१)व्यापारा भवन्ति । तथाऽदृष्टे=परोक्षविषयेऽपि, त्रयस्य=इन्द्रिय (२) रहिततत्रयस्य युगपत् क्रमशश्च व्यापारा ज्ञेयाः । अनुमानशब्दयोर्विषये इन्द्रियाप्रवृत्तेस्त्रयस्येत्युक्तम्, तयोर्विषये निर्विकल्पकाभावात् प्रथमं मनस एव व्यापारः, अनुमानशब्दविषये वृत्तिर्हि तत्पूर्विका दृष्टपूर्विकेति विशेषः । अनुमाने व्याप्तिज्ञानार्थं प्रत्यक्षापेक्षा, शब्दे शक्त्यनुमानापेक्षया प्रत्यक्षापेक्षेति सङ्क्षेपः ॥ ३० ॥

प्रश्न—पूर्वोक्त सारे कारणोंके व्यापारोंका क्रम है या अक्रम?

उत्तर—प्रत्यक्ष विषयके बाह्येन्द्रिय-मन-अहङ्कार तथा महत्तत्त्व इन चारों का अक्रम तथा क्रमसे भी व्यापार होता है, जैसे अन्धेरेमें बिजलीका प्रकाश होते ही शेरको सामने देखकर एकदम सङ्कल्प-अभिमान-तथा निश्चय हो जाते हैं जिससे देखने वाला झटसे हट जाता है। इसी प्रकार मन्द प्रकाशमें पहिले सामान्य रूपसे आगे उपस्थित विषयको जानकर सावधान होता हुआ 'यह हथियार लिये हुए चोर आरहा है' ऐसा मनमें समझकर यह मुझे ही मारने आरहा है ऐसा अभिमान कर निश्चय करता है कि मैं यहांसे हट जाऊं, इस प्रकार बा तथा तीन भीतरी ऐसे चारों कारणोंका क्रमसे भी व्यापार होता है। इसी प्रकार अप्रत्यक्ष विषयोंमें भी बाह्येन्द्रियोंको छोड़ कर तीन कारणोंके युगपत् (एकदम) तथा क्रमसे व्यापार होते हैं, परन्तु वे प्रत्यक्षपूर्वक होते हैं क्योंकि अनुमिति—शाब्दबोध तथा स्मरण अप्रत्यक्ष पदार्थोंमें प्रत्यक्ष पूर्वक ही प्रवृत्त होते हैं अन्यथा नहीं, यह विशेष है ॥ ३० ॥

ननु युगपत्पक्षो न सम्भवति, इन्द्रियव्यापाराधीनप्रवृत्तिकत्वान्मनसः, एवमहंकारमहतोर्मनोऽहंकारव्यापाराधीनव्यापारकत्वात् (३) तत्राह—

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम् ।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम् ॥ ३१ ॥

स्वां स्वामिति । आकूतमभिप्रायः, स चाचेतनानां बाधित इत्याकूतमत्र

---

(१) पूर्वोक्ताः निर्विकल्पादयः । (२) इन्द्रियमत्र बाह्यम् ।
(३) युगपत्पक्षो न सम्भवतीति पूर्वेणान्वयः ।

प्रवृत्त्युन्मुखत्वम्, तच्चैकस्य(१)व्यापारजननसमय एव; तथा चासति बाधकेऽन्यस्यापि स काल इति यौगपद्यं सम्भवति, क्रमपक्षे संशयादिरेव बाधक(२)इति बोध्यम्। स्वां स्वां प्रतिपद्यन्त इत्यनेन युगपत् प्रवृत्तावपि याष्टीकशाक्तीकानामिप हेतुभेदान्न वृत्तिसङ्कर इति ज्ञापितम् (३)। तथापि करणं केन प्रेर्यते तत्राह पुरुषार्थेति। भोगापवर्गलक्षणः पुरुषार्थ एव स्वविषयकेच्छाद्वारा करणव्यापारहेतुरित्यर्थः। कार्यते=प्रेर्यते, (४) तत्रेच्छावान् जीवः कर्ता आवश्यकः, ईश्वरस्तु न, तदपेक्षायां मानाभावादिति भावः॥ ३१॥

प्रश्न—पूर्वोक्त कारणोंके व्यापार केवल कारणोंसे नहीं हो सकते क्योंकि उनके वर्त्तमान होनेसे सर्वदा उनके व्यापार होते रहेंगे, और यदि अकस्मात्(१) होते हैं' ऐसा मानें तो करण—व्यापारोंका साङ्कर्य हो जायगा।

उत्तर—ये सब करण अपना २ व्यापार करते समय दूसरे करणोंके अपने २ व्यापारके सम्मुख होने रूप अभिप्रायको लेकर ही प्रवृत्त होते हैं इसलिये उनकी प्रवृत्तिमें परस्परका अभिप्राय कारण होनेसे व्यापारोंमें सांकर्य दोष नहीं आ सकता, अर्थात् जैसे अपने २ छड़ी, तलवार इत्यादि शस्त्रास्त्रोंको लिये बहुतसे लुटेरे आदमी दूसरेको लूटनेके लिये इशारा कर पहिले छिपे रहते हैं बाद इशारा पाते ही अपने २ ही हथियारों द्वारा लूटना शुरू करते हैं न कि एक दूसरेके हथियारसे, उसी तरह एक २ करण दूसरे करणोंके अभिप्राय से ही अपने २ व्यापारों को करते हैं इसलिये उक्त सांकर्य दोष नहीं आ सकता।

प्रश्न—यह दृष्टान्त विषम है क्योंकि लुटेरे चेतन हैं इसलिये एक दूसरेके अभिप्रायसे लूटता है यह ठीक है परन्तु करण तो जड़ हैं इसलिये वे दूसरेके

---

(१) इन्द्रियस्येत्यर्थः। (२) क्रमिककरणव्यापारानङ्गीकारे संशयो न स्यादिति भावः। (३) यथा याष्टीकादयो योद्धारः कृतसङ्केता युद्धसमये नियतस्थानशस्त्रादीन्येवोपाददते तथा महदादयोऽपि कृतस्वस्वव्यापारसंकेताः स्वां स्वामेव वृत्तिं प्रतिपद्यन्ते इति न तेषां व्यापारसांकर्यमित्याशयः। (४) यद्यपि साङ्ख्यमते भोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थस्यैव करणप्रवर्तकत्वं न तु तदतिरिक्तचेतनस्य कस्यचित्तथापि इच्छां विना पुरुषार्थस्य प्रयोजकत्वासम्भवाच्चेतनेच्छाऽऽवश्यकीत्यभिप्रायेणाह तत्रेति। एतावतापि चेतनस्य साध्याभावात्करणवृत्तिव्यापारार्थं तत्कल्पनमिति भावः।

---

(१) विना कारणके।

अभिप्रायसे अपने व्यापारमें प्रवृत्त कैसे होसकते हैं इसलिये क्या इनका अधिष्ठाता व्यापारमें प्रवृत्त कराने वाला मानना चाहिये ?

उत्तर—भोग तथा अपवर्गरूप पुरुषार्थके कारण जड़ करणोंकी स्वयं प्रवृत्ति हो सकती है तो उनका प्रवर्त्तक चेतन है ऐसा माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है, इस बातको स्वयं 'वत्सविवृद्धिनिमित्तम्' इत्यादि ५७ वीं कारिकामें सिद्ध करेंगे ॥ ३१ ॥

करणानि कानि तत्राह—

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम् ।
कार्यं च तस्य दशधाऽऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च ॥ ३२ ॥

करणमिति । त्रयोदशविधं=बुद्ध्यहंकारौ, एकादशेन्द्रियाणि च । एषां व्यापारानाह आहरणेत्यादि । तत्राहरणं कर्मेन्द्रियाणाम्, धारणं महदहंकारमनसाम्—स्ववृत्तिप्राणादिपञ्चद्वारा देहधारणात् प्रकाशो बुद्धीन्द्रियाणां व्यापारः । विषयाः कतिविधास्तत्राह कार्यं चेति । तस्य त्रयोदशविधस्य, तत्राहार्यं (१) दिव्यादिव्यभेदेन प्रत्येकं द्वैविध्याद्दशधा कर्मेन्द्रियाणाम्, एवं धार्यं शरीरादिकमारम्भकभूतानाम् (२) दिव्यादिव्यभेदाद्दशधा, बुद्ध्यहंकारमनसां प्रकाश्यं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यं दिव्यादिव्यभेदाद्दशधा बुद्धीन्द्रियाणाम् ॥ ३२ ॥

हिंदी प्रश्न—करण कौनसे हैं ?

उत्तर—बुद्धि, अहंकार तथा ग्यारह इन्द्रिय ऐसे तेरह सांख्यशास्त्रमें करण कहे जाते हैं, जिनमेंसे कर्मेन्द्रियोंका अपने २ विषयोंको ग्रहण करना, बुद्धि अहंकार मन इन तीनोंका प्राणादि वायुओंके द्वारा शरीरको धारण करना, तथा ज्ञानेन्द्रियोंका अपने २ विषयको प्रकाशित करना व्यापार है ।

प्रश्न—व्यापार (क्रिया)के सकर्मक होनेसे वे कर्म (कार्य) कौनसे और कितने हैं ।

उत्तर—इस तीन प्रकारके क्रिया के हार्य-धार्य-प्रकाश्य ऐसे तीनों कार्य दस २ प्रकारके होते हैं, क्योंकि कर्मेन्द्रियोंके ग्रहणयोग्य, वचन-आदान इत्यादि

---

(१) आहार्यं व्याप्यं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाख्यम् । (२) पृथिव्यादीनां पञ्चानाम् ।

विषय लौकिक तथा भेदसे दो प्रकारके होनेसे दस प्रकारके होते हैं। तथा बुद्धि, अहंकार, मन इन तीनोंके धारणयोग्य--शरीरादिरू कार्य पृथिवी आदि पांच महाभूतोंसे पैदा हुये हैं जो लौकिक तथा अलौकिक भेदसे दो प्रकारके होनेसे धार्य कार्य भी दस प्रकारका है, इसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियोंसे प्रकाश करने योग्य-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ऐसे पांच विषय भी दिव्य तथा अदिव्य इन दो भेदों से दो प्रकारके होनेसे दस प्रकारके हैं ॥ ३२ ॥

त्रयोदशकरणानां भेदमाह—

अन्तःकरणं त्रिविधं दशधा बाह्यं त्रयस्य विषयाख्यम् ।
साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम् ॥ ३३ ॥

अन्तःकरणमिति । महदहंकारमनोभेदेन त्रिविधमन्तःकरणम् (१), बाह्यं करणं दशधा पञ्चबुद्धीन्द्रियपञ्चकर्मेन्द्रियभेदात्, त्रिविधस्यान्तःकरणस्य विषयं व्यापारमाख्याति जनयतीति विषयाख्यम्, मनोऽहंकारबुद्धीनां व्यापारेषु (२)बुद्धीन्द्रियव्यापारस्यो (३) पयोगात्, कर्मेन्द्रियव्यापारस्यापि (४) बुद्धीन्द्रियद्वारान्तःकरणव्यापारे उपयोगः, (५) कर्मेन्द्रियव्यापारेण जनिते पदार्थे बुद्धीन्द्रियप्रवृत्त्यान्तःकरणप्रवृत्तेः । बाह्येन्द्रियं किं तत्राह (६) साम्प्रतकालं वर्तमानमात्रविषयकम्, बाह्यं बहिरिन्द्रियम्, कर्मेन्द्रियस्य तत् (७) परम्परया (८) बोध्यम् । त्रिकालम्=अतीतानागतवर्तमानविषयम्, तत्रानुमानशब्दसहकारेणातीतानागतविषयकम्, इन्द्रियसहकारेण वर्तमानविषयकम्, आभ्यन्तरं=मनोबुद्ध्यहंकाराख्यम् ॥ ३३ ॥

हिंदी प्रश्न—इन तेरह करणोंके अवान्तर भेद कितने हैं ?

उत्तर—इन तेरहों करणोंमेंसे महत्तत्व, अहंकार तथा मन ये तीन भीतरी करण हैं और ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय ये दस बाह्य करण हैं, जो तीनों भीतरी करणोंके संकल्प, अभिमान तथा अध्यवसायरूप व्यापार करनेमें द्वार होते हैं,

---

(१) शरीराभ्यन्तरवृत्तित्वादन्तःकरणम् । (२) अध्यवसायाभिमानसंकल्पेषु । (३) आलोचनाख्यस्य । (४) वचनादानादिकस्य । (५) कथमित्यत आह कर्मेन्द्रियेति । (६) बाह्याभ्यन्तरकरणयोर्विशेषान्तरमाह साम्प्रतकालमिति मिश्राः । (७) वर्तमानविषयत्वम् । (८) बुद्धीन्द्रियद्वारा । अत्र हेतुश्चिन्त्यः ।

जिसमें से ज्ञानेन्द्रि विषयके प्रत्यक्ष द्वारा तथा कर्मेन्द्रिय अपने अपने व्यापारके द्वारा तीनों भीतरी करणोंके विषयमें प्रवृत्त होते हैं। इसी प्रकार बाह्य दस करण वर्त्तमान विषयमें प्रवृत्त होते हैं, और तीनों अंतःकरण वर्त्तमान, भूत तथा भविष्य ऐसे त्रिकालविषयोंमें प्रवृत्त होते हैं, यह भी दोनों प्रकारके करणों की विशेषता है। अनुमान तथा शब्दकी सहायतासे भूत तथा भविष्य विषयमें और इंद्रियोंकी सहायतासे वर्त्तमान विषयमें भी तीन अंतःकरणों की प्रवृत्ति होती है॥

बाह्येन्द्रियाणां विषयान् विवेचयति—

बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पञ्च विशेषाविशेषविषयाणि।
वाग्भवति शब्दविषया शेषाणि तु पञ्चविषयाणि॥ ३४॥

बुद्धीति। तेषां दशानामिन्द्रियाणां मध्ये बुद्धीन्द्रियाणि विशेषा योग्या अविशेषा अतीन्द्रियास्त एव विषया येषां तादृशानि, तत्र योग्यायोग्ययोर्ग्रहणं योगीन्द्रियाणाम्, योग्यमात्रग्रहणमस्मदादीन्द्रियाणाम्। एवं कर्मेन्द्रियेषु वाक् शब्दविषया(१) तज्जनकत्वात्, शब्दश्च न तन्मात्ररूपस्तस्याहंकारजन्यत्वात्। शेषाणि = पाणिपादपायूपस्थानि, पञ्चविषयाणि = पाण्याद्याह्रार्याणां घटादीनां पञ्चशब्दाद्यात्मकत्वादिति॥ ३४॥

हिन्दी प्रश्न—इनमेंसे बाह्यकरणरूप दस इंद्रियोंके विषय क्या हैं?

उत्तर—इन दस इंद्रियोंमेंसे पांच ज्ञानेंद्रियोंके विशेष (स्थूल) पांच पृथिवी, जल इत्यादि तथा अविशेष (अतीन्द्रिय) पञ्च तन्मात्रा क्रमसे हमलोगों के तथा योगियोंके प्रत्यक्ष विषय हैं। एवं पांच कर्मेन्द्रियोंमेंसे वागिन्द्रिय शब्दका जनक होनेसे स्थूल शब्दको ही विषय करता है, सूक्ष्मरूप शब्द वागिन्द्रियका विषय नहीं होता क्योंकि वागिन्द्रिय तथा सूक्ष्मशब्द दोनों ही अहंकारके कार्य हैं। बाकीके हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ इन चार कर्मेन्द्रियोंके पांच २ विषय होते हैं क्योंकि हाथ इत्यादिकोंसे ग्रहण करने योग्य पदार्थ शब्दादि पंच स्वरूप हैं॥३४॥

बाह्येन्द्रियाणामप्राधान्यं वक्तुमाह—

सान्तःकरणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात्।

---

(१) स्थूलशब्दविषया, तत्र हेतुमाह तज्जनकत्वादिति। स्थूलशब्दस्यैव हेतुत्वादित्यर्थः। इदमेवाह शब्दश्चेति। सूक्ष्मशब्दश्च तन्मात्ररूपो न वाग्विषयस्तस्याहंकारिकतया वागिन्द्रियेण सहैककारणकत्वात् इति भावः।

तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि ॥ ३५ ॥

सान्तःकरणेति । अन्तःकरणे मनोऽहंकारौ ताभ्यां सहिता बुद्धिः यस्मात् सर्वमिन्द्रियोपनीतं विषयं पुरुषोपकारकमवगाह्यतेऽध्यवस्यति तस्मात् तत् त्रिविध-मन्तःकरणं द्वारि(१)द्वारमस्यास्तीति कृत्वा, शेषाणि दशेन्द्रिययाणि द्वाराणि(२) साक्षात्परम्परया वेन्द्रियद्वारैवान्तःकरणानां विषयावगाहनात्, द्वारत्वं चास्योप-कारकत्वम्, तच्चालोचनद्वारा प्रागुक्तदिशा बोध्यम् ॥ ३५ ॥

हिंदी—प्रश्न—क्या अन्तःकरणोंकी अपेक्षासे बाह्येन्द्रियोंमें कोई विशेषता है ?

उत्तर—है, क्योंकि मन तथा अहंकार सहित बुद्धि जिस कारण सभी बाह्य इन्द्रियोंसे प्राप्त किये विषयोंको पुरुषके भोगके लिये निश्चय करती हैं, इस कारण तीनों भीतरी करण द्वारि–प्रधान हैं और बाकीके दस बाह्य इन्द्रिय द्वार-अप्रधान हैं, क्योंकि साक्षात् या परम्परासे बाह्येन्द्रियोंके द्वारा ही भीतरी करण विषयोंमें अपना २ व्यापार करते हैं ॥ ३५ ॥

अन्तःकरणेषु बुद्धेः प्राधान्यं वक्तुमाह—

एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणा गुणविशेषाः ।
कृत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति ॥ ३६ ॥

एते प्रदीपकल्पा इति । एते गुणविशेषा गुणानां भेदाः सत्त्वाद्या येषु ते, दशेन्द्रियमनोऽहंकाराः पुरुषस्य कृत्स्नमर्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति (३) तत्र प्रकाशयन्ति यथा दीपो घटं प्रकाश्य पुरुषे प्रापयति ॥ ३६ ॥

हिंदी—प्रश्न—तीन भीतरी करणोंमें भी कोई विशेषता है ?

उत्तर—तीनोंमें भी बुद्धि ही की प्रधानता है क्योंकि बत्ती, तेल, आग इनके समान परस्पर विरुद्ध सत्त्व, रज तथा तमोगुणके विकाररूप ये सब गुण विशेष परिणामरूप–मन बाह्येन्द्रिय अहंकारादिक अन्धकार निरासद्वारा रूपप्रकाशके लिए प्रदीपके समान मिलकर सारे आत्माके भोगयोग्य पदार्थोंको भोगके लिये बुद्धिको

---

(१) प्रधानम् । (२) अप्रधानानि । (३) समग्रं पदार्थजातं प्रकाश्य आलोच्य संकल्प्याभिमत्य च बुद्धौ प्रयच्छन्ति बुद्धौ साक्षादुपभोगसाधनायाध्यव-सायार्थमर्पयन्तीत्यर्थः ।

प्रकाशित कर देते हैं, जिस तरह ग्रामाध्यक्ष गृहस्थोंसे कर लेकर विषयाध्यक्षको और विषयाध्यक्ष सर्वाध्यक्षको और वह राजाको देता है, अर्थात् बाह्येन्द्रिय पदार्थों को प्रत्यक्ष कर मनको और मन संकल्प कर अहंकारको और अहंकार अभिमान कर सब करणोंमें श्रेष्ठ–बुद्धिको विषयोंका समर्पणकर देते हैं इसलिये बुद्धि ही सब करणों में प्रधान है ।। ३६ ।।

बुद्धिरपि न स्वार्था किन्तु परार्थैवेत्याह—

सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः ।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम् ।। ३७ ।।

सर्वमिति । सर्वं शब्दादियोग्यं प्रति य उपभोगः पुरुषस्य तं यस्मात् साधयति (१) तस्मात् सा प्रधनापि परार्थैव न स्वार्थेति भावः । मोक्षहेतु-ज्ञानजनकत्वादपि सा (२) तथेत्यभिप्रेत्याह—सैव पुनर्विवेकदशायां प्रधानपुरुष-योरन्तरं वैलक्षण्यं सूक्ष्ममतिदुर्ज्ञेयं विशिनष्टि विषयीकरोति, (३) अध्यवसायरूप-त्वाद्बुद्धिरेव तथेति (४) भावः ।। ३७ ।।

हिंदी—प्रश्न तीन भीतरी करणोंमें से बुद्धि को ही क्यों विषय दिये जाते हैं, बुद्धि अहंकार या मनको विषय समर्पण क्यों नहीं करती, अर्थात् बुद्धि ही प्रधान क्यों ?

उत्तर—पुरुषार्थ–भोग के प्रयोजक होनेसे उसका जो प्रत्यक्ष साधन है वही प्रधान हो सकता है, बुद्धि ही आत्माके साक्षात् भोगोंका साधन है क्योंकि उसीके निश्चयके अनुसार आत्माको भोग होता है इसलिये वही प्रधान है । जैसे सर्वाध्यक्ष-प्रधानमन्त्री ही राजाके सब राजकार्योंका साधक होनेसे प्रधान होता है और बाकीके ग्रामाध्यक्ष इत्यादि उसके अङ्ग होते हैं, वैसे बुद्धि सारे आत्माके भोगों को सिद्ध कर देती है और विवेकज्ञानके समय वही प्रकृति आदि जड़ तथा चेतन-को विलक्षणताको (जिसे जानना बहुत कठिन है) बता देती है इसलिये तीनों अन्तःकरणोंमें भी बुद्धि ही प्रधान है ।। ३७ ।।

---

(१) समुपस्थापयति, भोगापवर्गौ हि पुरुषार्थः, तस्य साक्षात्सम्पादकं यत्तदेव प्रधानम्, बुद्धिश्च साक्षात्सम्पादिका पुरुषार्थस्यातः प्रधानं करणमिति भावः । (२) बुद्धिः । (३) इवार्थापन्नतानिरासेन बोधयति, साक्षान्मोक्षप्रयोजिकां सत्वपुरुषान्यताख्यातिं सम्पादयतीति भावः । (४) प्राधान्यवतीति ।

अविशेषविशेषावुक्तौ तौ काविल्यत आह—

तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्चभ्यः ।
एतेस्मृता विशेषाः शान्ता घोराश्च मूढाश्च ॥ ३८ ॥

तन्मात्रेति । तन्मात्राणि शब्दादीनि अविशेषाः, अयोग्यत्वात्, तेभ्यस्तन्मात्रेभ्यः पञ्चभ्यो भूतानि स्थूलानि पृथिव्यादीनि, एते पृथिव्यादयः विशेषाः, योग्यत्वात्, कुतः ? शान्ता इति । च एको हेतौ द्वितीयः समुच्चये, यस्मादाकाशादिषु स्थूलेषु केचित् शान्ताः सत्त्वप्रधानतया सुखकराः प्रसन्ना लघवश्च, केचिद्रजःप्रधानतया घोरा दुःखकराः, केचित् तमःप्राधान्यान्मूढा मोहकरा गुरवश्च, गुणानां गुणप्रधानभावतो यथेदं तथोपपादितमधस्तात् ॥ ३८ ॥

हिंदी—प्रश्न—पूर्वोक्त विशेष तथा अविशेष क्या हैं ?

उत्तर—सूक्ष्म शब्दादि पांच तन्मात्रा ही अविशेष हैं क्योंकि उनमें उपभोग योग्य शान्तत्वादि धर्म नहीं हैं । उन पांचोंसे स्थूल पांच पृथिवी आदि भूत पैदा हुए हैं, जिन्हें साङ्ख्यशास्त्रमें विशेष कहा गया है, क्योंकि इनमेंसे कोई २ सत्त्वप्रधान होनेसे शान्त, सुखदायक, प्रसन्न और लघु हैं, और कोई रजोगुण प्रधान होनेसे घोर तथा दुःखकर और कोई २ तम प्रधान होनेसे मोहको करनेवाले गुरु हैं इसलिये इनमें भोगकी योग्यता है । ३८ ॥

एतावन्त एव विशेषा इति न किन्त्वन्येऽपि सन्तीत्याह (१)—

सूक्ष्मा मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः ।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्तन्ते ॥ ३९ ॥

सूक्ष्मेति । सूक्ष्मा लिङ्गशरीराख्याः, (२)मातापितृजाः स्थूलदेहाः, प्रभूताः पर्वतवृक्षाद्याः, विशेषकार्यत्वाद्विशेषाः । (३) तत्रसूक्ष्मदेहाः सूक्ष्मतन्मात्राद्यारब्धत्वात्, मातापितृजास्तु मातापितृभुक्तान्नजशुकशोणिताद्यारब्धत्वात्, प्रभूतास्तु

(१) विशेषाणामवान्तरविशेषानाहेत्यर्थः । (२) महदादिसूक्ष्मगन्धतन्मात्रान्ता अष्टादशतत्त्वात्मकाः सूक्ष्मदेहा इत्यर्थः, तत्र शान्तघोरमोहधर्मकाणामिन्द्रियाणां विशेषतया तद्घटिताष्टादशतत्त्वसमुदायात्मकसूक्ष्मदेहस्यापि विशेषत्वमित्ययमेको विशेषः । मातापितृजस्थूलदेहस्य शान्तादिधर्मवत्त्वात्पर्वतादिप्रभूतानां च स्थूलभूतविशेषत्वमित्यपरं विशेषद्वयमूहनीयम् । (३) उक्तविशेषत्रयस्य सूक्ष्मदेहादि-

तद्विलक्षणकारणकत्वात् । तेषां मध्ये सूक्ष्मा नियता आमोक्षावस्थायिनः, मातापितृजा निवर्तन्ते मरणकाले पतन्ति, उपलक्षणमेतत् प्रभूतानाम्, तेऽपि निवर्तन्त इति बोध्यम्, विशिष्य कथनं तु गौणजीवत्वाभिप्रायकं बोध्यम् ॥ ३९ ॥

हिंदी—प्रश्न—विशेष कितने हैं ?

उत्तर—ये विशेष सूक्ष्म (लिङ्गशरीर),मातापृतिज (स्थूल शरीर) और प्रभूत (पर्वतवृक्षादिमहाभूत) ऐसे तीन प्रकार के हैं जिनमें से सूक्ष्म तन्तमात्रादिकों से पैदा हुए सूक्ष्मशरीररूप विशेष नियत अर्थात् मुक्तिकाल तक रहते हैं, और मातापिताके खाये हुये अन्न रससे पैदा भये शुक्र तथा शोणित इत्यादिकोंसे पैदा हुये स्थूल शरीर और प्रभूतरूप दो विशेषोंकी निवृत्ति होती है अर्थात् इन दो विशेषोंका नाश हो जाता है ॥ ३९ ॥

लिङ्गशरीरधर्मानाह—

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् ।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ॥ ४० ॥

पूर्वोत्पन्नमिति । पूर्वस्मिन्नादिसर्गे पूर्वस्मात् प्रधानादुत्पन्नमाविर्भूतम्, असक्तम् = अव्याहतं शिलामप्यनुप्रविशति, नियतं = प्रत्यात्मभिन्नम्, महदादिसूक्ष्मपर्यन्तं = महदहङ्कारमनोदशेन्द्रियतन्मात्रसमुदायरूपम्, संसरति = नवं नवं स्थूलशरीरमुपादत्ते पूर्वं पूर्वं च जहाति, निरुपभोगं = स्थूलदेहं विना भोगायासमर्थम्, भावैरधिवासितं = भावैर्यागादिभिरन्तर्भावै(१) श्चाधिवासितं कृतसंस्काराधानम्, यागजसंस्कारोऽदृष्टमेव ॥ ४० ॥

हिंदी—प्रश्न—सूक्ष्म शरीर क्या है तथा उसके धर्म क्या हैं ?

उत्तर—महत्तत्त्व, अहङ्कार, मन एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च तन्मात्रा इनका समुदायरूप पूर्वोक्त सूक्ष्म शरीर आदि सृष्टिमें प्रधानसे प्रगट होता है, तथा असक्त नाम अव्याहत है जिससे उसका पत्थर तकमें प्रवेश होता है और नियत नाम प्रत्येक आत्मामें अलग २ है तथा निरुपभोग अर्थात् स्थूल शरीर के विना भोगमें असमर्थ है और धर्मादि आठ भावोंसे सम्बद्ध होता हुआ यही सूक्ष्मशरीर पूर्व २ स्थूल शरीरको छोड़ कर नये २ स्थूलशरीरोंको ग्रहण करता है ॥ ४० ॥

सञ्ज्ञाभेदे हेतून्निर्दिशति तत्रेति । (१) वक्ष्यमाणैर्धर्मादिभिश्चेत्यर्थः ।

ननु तर्हि साहंकारेन्द्रियबुद्धित एव भोगोऽस्तु कृतं सूक्ष्मशरीरेणाप्रामाणिकेनेत्यत आह—

चित्रं यथाश्रयमृते स्थाण्वादिभ्यो विना यथा छाया ।

तद्वद्विना विशेषैस्तिष्ठति न निराश्रयं लिङ्गम् ॥ ४१ ॥

चित्रं यथेति । आश्रयं विना चित्रं न तिष्ठति तदाश्रित्यैव तिष्ठति, (१) तद्वद्विशेषैरतिसूक्ष्मैः शरीरैर्विना लिङ्गं लिङ्गनाज्ज्ञापनाद्बुद्ध्यादिकं वृत्तितन्मात्रादिसमुदायरूपत्वान्निराश्रयं न तिष्ठति किन्तु सूक्ष्मशरीराश्रितमेव तिष्ठति, अतस्तेषां धर्मिभूतं सूक्ष्मशरीरमावश्यकम् (२) ।

(३) ततः सत्यवतः कायात् पाशबद्धं वशं गतम् ।

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष बलाद्यमः ॥ इत्यादिप्रमाणाच्चेति भावः ।

(४) केचित्तु स्थूलशरीरावश्यकत्वाभिप्रायकमिदमिति वर्णयन्ति, तथाहि लिङ्गं समुदायात्मकं लिङ्गशरीरं विशेषैः स्थूलदेहैर्विना निराश्रयं सन्न तिष्ठति किन्तु स्थूलशरीरमाश्रित्यैव तिष्ठति, अतो न लिङ्गशरीरस्यान्यथासिद्धिरिति भावः । शेषं प्राग्वत् ॥ ४१ ॥

हिंदी—प्रश्न—अहंकार तथा इन्द्रियसहित बुद्धिको ही संसारके भोग क्यों नहीं होते तन्मात्रापर्यन्त पृथक् सूक्ष्म शरीर माननेकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—जिस प्रकार विना आधारके चित्र नहीं हो सकता अथवा विना वृक्षादिकोंके छाया नहीं पड़ती, उसी प्रकार सूक्ष्मशरीरोंके विना आत्माका अनुमापक होनेसे लिङ्गपदसे ग्राह्य बुद्ध्यादि तेरह करण निराधार नहीं रह सकते, इसलिये सूक्ष्म शरीर मानना आवश्यक है ॥ ४१ ॥

---

(१) अत्र यथा वा स्थाणुपुरुषादिभ्यो विना छाया न भवति किन्तु तदाश्रित्यैव छाया तिष्ठति इत्यधिकमपेक्षितम् । (२) तथाच जन्मप्रायणान्तरालकालिकबुद्ध्यादिसमुदायो वर्तमानशरीरधारः वर्तमानतन्मात्रान्वितबुद्ध्यादिसमुदायत्वाद्दृश्यमानशरीरवृत्तिबुद्ध्यादिसमुदायवदित्यनुमानेन सूक्ष्मदेहसिद्धिरिति भावः । (३) एवमनुमानेन सूक्ष्मशरीरं साधयित्वाऽऽगमेन साधयितुमागममाह—तत इति । (४) इदं स्वमतमिति प्रतिभाति, कस्यामपि व्याख्यायामस्यानुपलब्धेः ।

एवं सूक्ष्मशरीरास्तित्वमुपपाद्य, यथा संसरति येन च हेतुना तदुभयमप्याह —

पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गेन ।

प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद्व्यतिष्ठते लिङ्गम् ॥ ४२ ॥

पुरुषार्थेति । निमित्तं धर्मादि, नैमित्तिकं धर्मादिकारणकं स्थूलदेहादि, तदुभयप्रसङ्गेन तदुभयसम्बन्धेन, लिङ्गमिदं (१)सूक्ष्मशरीरं, नटवद्व्यवतिष्ठते—यथा नटो बहूनि विविधानि रूपाणि गृहीत्वा व्यवहरति तथेदमपि देवादिशरीरं परिगृह्य व्यवहरति । किमर्थं तत्राह—पुरुषार्थहेतुकमिति । पुरुषार्थो हेतुर्निमित्तं यस्य तादृशम्, पुरुषार्थफलकमिति यावत् । तत्तद्भोगादृष्टबलात् तत्तद्भोगार्थमेव तथा व्यवहरतीत्यर्थः । कुतोऽस्यैवंविधो महिमा तत्राह प्रकृतेर्विभुत्वयोगादिति । तथा च पुराणम्—

(२)वैश्वरूप्यात् प्रधानस्य परिणामोऽयमीदृशः । इति ।

प्रकृत्यापूरापगमाभ्यां महदल्पादिकं सर्वमुपपद्यत इति भावः ॥ ४२ ॥

हिंदी प्रश्न—सूक्ष्म शरीरके संसरणका कारण और उसके संसारका प्रकार क्या है ?

उत्तर—धर्मादिरूप निमित्त और धर्मादिकोंसे होने वाले स्थूल शरीरादिरूप कार्य इन दोनोंके सम्बन्धसे भोग तथा अपवर्गरूप पुरुषार्थके लिए प्रकृतिकी व्यापकताके सामर्थ्यसे यह सूक्ष्म शरीर नटके समान व्यापार करता है, अर्थात् जैसे नट कभी राम कभी कृष्ण बनकर उनके चरित्रोंको दिखाता है उसी तरह यह सूक्ष्म शरीर भी देवता मनुष्य इत्यादिकोंके स्थूल शरीरको धारण कर संसारमें गमनागमनको करता रहता है ॥ ४२ ॥

(३)प्राकृतवैकृतयोरप्रसिद्धत्वात् तौ कौ तत्राह—

सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिका वैकृतिकाश्च धर्माद्याः ।

---

(१) महदादिसूक्ष्मपर्यन्तमित्यनेनोक्तम् । व्यवतिष्ठते—आत्यन्तिकादिप्रलयपर्यन्तं मोक्षपर्यन्तं वाऽऽत्मना सहैवावतिष्ठत इत्यर्थः, तत्र दृष्टान्तं विवृणोति यथेति ।
(२) प्रकृतेः जगदात्मकनानावस्थानरूपाद्विभुत्वादयं देहाद्देहान्तरप्राप्त्याद्यात्मकः परिणामः संसारोऽत्याश्चर्यकरो भवतीत्यर्थः । तत्र न्यूनाधिकभावःकथमतआह—प्रकृत्यापूरेति । (३)भावैरधिवासितमित्युक्तं, तत्र सांसिद्धिकः प्रसिद्ध एवेत्यादिः पूरणीयः ।

दृष्टाः करणाश्रयिणः कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः ॥ ४३ ॥

सांसिद्धिकाश्चेत्यादि । भावा धर्माद्या ये सांसिद्धिकाः स्वाभाविकास्त एव प्राकृतिकाः यावद्वस्तुस्थायिनो यथा महत्तत्त्वादहङ्कारादयः, वैकृतिकाः कदाचिद् वृत्तयः (१) । तेषां मध्ये धर्माद्याः करणं बुद्धितत्त्वम् तदाश्रयिणो दृष्टाः साङ्ख्याचार्यैः । कार्याश्रयिणः—कार्यं शरीरं तदाश्रयिणः कललद्याः, कललबुद्बुदमांसपेशीकरण्डाङ्गव्यूहा गर्भस्थस्य, ततो निर्गतस्य बाल्यकौमारयौवनवार्द्धकानीति (२) सङ्क्षेपः ॥ ४३ ॥

हिंदी प्रश्न—सूक्ष्म शरीरके वर्णनमें बतलाते हुए भाव पदार्थ क्या हैं ?

उत्तर—जो धर्मादि आठ भाव सांसिद्धिक अर्थात् स्वाभाविक हैं, वे ही प्राकृतिक साथ पैदा हुये या जबतक आधार पदार्थ है तबतक रहनेवाले हैं, जैसे महत्तत्व अहंकार इत्यादि, पर गौडपादाचार्यके मतसे साथ पैदा हुये कर्मादिभाव सांसिद्धिक होते हैं और बुद्धितत्त्वके साथ जिनके शरीर पैदा हुये हैं ऐसे सनकादि सिद्धोंके प्रकृतिसे पैदा हुये भाव प्राकृत होते हैं । और उपायोंके करनेसे पैदा हुये जैसे वाल्मीकि आदिकोंके धर्मादि भाव जो असांसिद्धिक हैं वे ही वैकृत बोले जाते हैं या जो भाव कभी २ रहते हैं वे वैकृत होते हैं । धर्मादिभाव मुख्यतः बुद्धितत्त्वरूप करणमें रहते हैं, पर धर्मादि भावोंसे पैदा हुई कलल बुद्बुद इत्यादि अवस्था भी भाव कही जाती है, इसी आशयसे मूलमें कहा है 'कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः', अर्थात् धर्मादिभावोंसे पैदा हुई गर्भमें रहने वाले प्राणियोंकी कलल, बुद्बुद, मांसपेशी इत्यादि अवस्था तथा गर्भसे बाहर निकलनेके बाद कौमार–यौवन–वार्द्धक्यादि अवस्थारूप भाव कार्य–स्थूल शरीरमें रहते हैं ॥

बुद्धिनिष्ठानां धर्मादीनां (३) प्रयोजनमाह—

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण ।

---

(१) गौडपादमते सांसिद्धका प्राकृता वैकृताश्चेति त्रिविधा भावाः, तत्र सहोत्पन्नाः सांसिद्धिका यथा कपिलस्य, प्राकृता उत्पन्नकार्यकारणानां शरीरिणां सनकादीनाम् , वैकृता आचार्यमूर्तिनिमित्तका अस्मदादीनां धर्मादयो भावा इति विशेषस्तत्रैव द्रष्टव्यः । (२) कललाद्यवस्थारूपाणां भावानां कार्यशरीराधारत्वमिति भावः, एतन्मते तु सांसिद्धिकानां प्राकृतेष्वन्तर्भावाद् द्विविधा एव भाव इति ज्ञेयम् । (३) भावानामिति शेषः ।

ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ॥ ४४ ॥

धर्मेणेति । केवलशुक्लेन(१) परहिंसावर्जितेन, शुक्लकृष्णेन (२) च परहिंसापूर्वकेण, ऊर्ध्वं ब्राह्मप्राजापत्यैन्द्रगान्धर्वयाक्षपैत्रादिषु लोकेषु, अधस्ताद् रौरवमहारौरववह्निवैतरणीकुम्भीपाकतामिस्रान्धतामिस्रादिनरकेषु अधर्मेण शास्त्रनिषिद्धाचरणेन परपीडादिना, गमनं भवति । ज्ञानेनात्मसाक्षात्कारेण अपवर्गो मोक्षः । विपर्ययात् अज्ञानाद् बन्धः प्राकृतिकवैकृतिकदाक्षिणभेदेन त्रिविधः ।

तत्र प्राकृतिकः[1] आत्मबुद्ध्या प्रकृत्युपासननिबन्धनो यथा—

पूर्णं शतसहस्रं तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः । इति ।

वैकृतिक[2] आत्मबुद्ध्येन्द्रियोपासननिबन्धनो यथा—

दश मन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः । इत्यादि ।

दाक्षिणः[3] पुरुषमजानतः कामनया वैदिककर्मानुष्ठाननिबन्धनो यथा—

पुरुषज्ञानहीनानां स्वर्गाद्यर्थं हि कुर्वताम् ।
तानि तानीह कर्माणि तेषां बन्धस्तु दाक्षिणः ॥ इति ।

सञ्ज्ञा तु दक्षिणासम्बन्धनिबन्धना बोध्येति सङ्क्षेपः ॥ ४४ ॥

हिंदी प्रश्न—किस २ निमित्तका कौन २ विशेष नैमित्तिक है ?

उत्तर—धर्मरूप निमित्तसे स्वर्गादि लोकमें गमन होता है अर्थात् देवादि शरीररूप कार्य प्राप्त होता है, और अधर्म निमित्तसे भूतल इत्यादि नीचेके लोगों में गमन होता है अर्थात् मृत्युलोकमें पशु इत्यादि शरीर तथा नरकमें नारकीय शरीररूप कार्य होता है । और ज्ञानरूप निमित्तसे अपवर्ग (मुक्ति) रूप कार्य होता है तथा अज्ञानसे बन्धनरूप कार्य होता है ॥ ४४ ॥

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाये'ति श्रुत्या पुरुषज्ञस्यैव मोक्षकथनेनान्यस्य मोक्षाभावकथनाज्ज्ञानरहितस्य विरक्तस्यापि न मोक्ष इत्याशयवानाह (३)—

वैराग्यात्प्रकृतिलयः संसारो भवति राजसाद्रागात् ।
ऐश्वर्यादविघातो विपर्ययात् तद्विपर्यासः ॥ ४५ ॥

---

(१) जपादिना । (२) अर्थानर्थहेतुसुकृतदुष्कृतात्मकेन यागादिना । कृष्णत्वे हेतुमाह परेति । (३) अवशिष्टभावानां प्रयोजनमाहेति शेषः ।

वैराग्यादिति। दृष्टानुश्रविकविषयेष्वलम्बुद्धिविशेषरूपाद् वैराग्यात् (१) केवलात् प्रकृतिलयः, प्रकृतिपदेन महदहङ्कारादोऽपि गृह्यन्ते, तेष्वात्मबुद्धयोपास्यमानेषु लयो भवतीत्यर्थः। राजसाद् रजकार्यात् रागात् कामक्रोधादेः संसारो भवति, तत्र यागादिगोचरात् (२) स्वर्गादिः, स्त्र्यादिगोचरादिहलोकभोग एवेति विवेकः। ऐश्वर्यादणिमादिलक्षणात्, अविघातो (३) गतिप्रतिबन्धाभावः। विपर्ययादनैश्वर्यात्, तद्विपर्यासः सर्वत्र गतिविच्छेदः, यथा कस्यचिदनीश्वरस्य परगृहे प्रतिघातः ॥ ४५ ॥

इसी प्रकार पूर्वोक्त केवल वैराग्य रूप निमित्तसे प्रकृति महत्तत्व इत्यादिकों को आत्मा समझ कर उपासना करनेसे उन्हींमें लयरूप कार्य होता है, और रजोगुणके कार्य राग–प्रेम काम, क्रोध इत्यादि निमित्तोंसे संसार रूप कार्य तथा पूर्वोक्त अणिमादि आठ ऐश्वर्यरूप निमित्तसे इच्छा की रुकावट न होना, अर्थात् चाहे जिस किसी लोक में जानेको इच्छाका नाश न होना–कार्य होता है, और उक्त ऐश्वर्योंके न होने से इच्छा का नाश होना ही कार्य होता है ॥ ४५ ॥

ननु विपर्ययाद्याः साङ्ख्यज्ञेभ्यः श्रूयन्ते, किं ते तत्त्वान्तराणि? कतिविधा वा? तत्राह(४)—

एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत् ॥ ४६ ॥

एष इति। विपर्ययश्चाशक्तिश्च तुष्टिश्च सिद्धिश्च आख्या नामानि यस्य, एष गणः, प्रत्ययो बुद्धिस्तत्सर्गस्तज्जन्यः, तथा च बुद्धितत्त्वे प्रविष्टो न तत्त्वान्तरं कार्यकारणाभेदात् (५)। तस्य भेदाः पञ्चाशद्वक्ष्यन्ते। ननु कथमेककारणादेतानि

---

(१) पूर्वोक्ताद्वशीकारसञ्ज्ञाख्याद्वैराग्यमात्रादित्यर्थः। (२) राजसाद्रागादिति पूर्वेणानुषञ्जनीयम्। एवमग्रेऽपि। (३) गतीच्छादेः सर्वत्र सफलतेत्यर्थः। एवमग्रेपि। विपर्ययपक्षे गतीच्छादेर्विच्छेदस्तद्विघातो भवतीत्यर्थो द्रष्टव्यः। (४) तदेवमुक्तान बुद्धिधर्मान्धर्माद्यष्टभावान् सङ्क्षेपेण विस्तरेण चाह एष इति अन्ये। (५) एष-भावाख्यो बुद्धिकार्यं विपर्ययादिभेदेन सङ्क्षेपाच्चतुर्विधमित्यन्ये। तत्र 'विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्' इति योगदर्शनोक्तमज्ञानमविद्येति चोच्यते, इन्द्रियादिकरणानामसामर्थ्यमशक्तिः, मोक्षप्रतिद्वन्द्वी प्राकृतिकः सन्तोषविशेषस्तुष्टिरणिमादिसामर्थ्यविशेषः सिद्धिरिति द्रष्टव्यम्।

कार्याणि तत्राह (१)गुणवैषम्यविमर्दादिति। गुणानां वैषम्यं न्यूनाधिकवलता मन्दमध्याधिकभावेन नानाविधा तथा विमर्दो गुणस्य गुणयोर्वा अभिभवः, तस्मादित्यर्थः। (२) तदेवं कार्यकारणयोरभेदेन विपर्ययस्याज्ञानेऽशक्तेरधर्मे तुष्टेर्धर्मे सिद्धेर्ज्ञान इति विवेकः। अज्ञानादयस्तु बुद्धेरेवातो विपर्ययादयोऽपि न तत्त्वान्तरमित्यास्तां विस्तरः॥ ४६॥

यह पूर्वोक्त निमित्त तथा नैमित्तिकोंका भेद बुद्धितत्त्वकी ही सृष्टि है जिसके संक्षेपमें विपर्यय–अशक्ति–तुष्टि और सिद्धि ऐसे चार भेद हैं, जिनमें विपर्यय, नाम, अज्ञान या अविद्या तथा पूर्वोक्त करणोंके विनाशसे होने वाली अशक्ति (असामर्थ्य)–ये दो बुद्धिके धर्म हैं इसी प्रकार तुष्टि तथा सिद्धि भी बुद्धिके ही धर्म हैं जिनका आगे विस्तारसे वर्णन करेंगे। इनमें से विपर्यय, अशक्ति तथा तुष्टि इन तीनोंमें पूर्वोक्त आठ बुद्धिके धर्मादि भावोंमेंसे ज्ञानको छोड़ कर सातका, तथा सिद्धिमें ज्ञानका अन्तर्भाव, हो जाता है। परन्तु इस संक्षिप्त चार भेदोंका-सत्त्व रज तथा तम इन तीन गुणोंमेंसे एक २ या दो २ गुणोंके अधिक वलवान् होने तथा एक एक या दो २ गुणोंका कम वल होनेसे जो वैषम्य होता है जिससे एक एक या दो दो के अभिभव (तिरस्कार) होनेके कारण गुणोंके पचास भेद होते हैं॥ ४६॥

पञ्चाशदिति सामान्यत उक्तम्, तत्र कस्य कतिविधा भेदास्तत्राह—

पञ्च विपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिस्तु करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः॥ ४७॥

पञ्चाशदिति। विपर्ययः संसारबीजम्, (३)क्लेशाः पञ्च अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशास्तेषामेव यथासङ्ख्यं तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिस्रसञ्ज्ञाः, अभिनिवेशो भयम्। ननु रोगादिकृतानामशक्तीनां रोगसमसङ्ख्यतया कथमष्टाविंशतिधाऽशक्तिस्तत्राह करणवैकल्यादिति। करणानां बुद्धितत्त्वैकादशेन्द्रियाणां यद् वैकल्यं वधस्तस्तमाद्याऽशक्तिः(४)साऽष्टाविंशतिधेत्यर्थः, शेषं सुगमम्॥ ४७॥

---

(१) विस्तारमाह गुणवैषम्यविमर्दादित्यन्ये। (२) एतेषां समस्तव्यस्तानामुक्तबुद्धिधर्माष्टकेऽन्तर्भावमाह तदेवमिति। अज्ञान .ति . अन्तर्भाव इति शेषः एवमग्रेऽपि। (३) संसारबीजस्य विपर्ययापरपर्यायस्य यौगिकीं सञ्ज्ञां दर्शयन् तस्य भेदानाह क्लेशा इत्यादिना। तत्र पुरुषबुद्ध्योरेकात्मतेवास्मिता, रागद्वेषौ प्रसिद्धावतोऽभिनिवेशपदार्थमाहाभिनिवेश इति। (४) अत्र करणानामिन्द्रियाणा-

प्रश्न—हिंदी—पचास विस्तृत बुद्धिसर्गोंके भेद कौनसे हैं ?

उत्तर—जो अज्ञानरूप विपर्यय संसारका मुख्य बीज है जिसके अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष तथा अभिनिवेश ऐसे पांच भेद हैं, उन्हें सांख्यशास्त्र में क्रमसे तम, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्धतामिस्र कहते हैं। ये पांच विपर्ययके भेद हैं। और बुद्धितत्त्व तथा ग्यारह इन्द्रिय रूप करणोंकी विफलतासे होने वाली अशक्ति अठ्ठाइस प्रकारकी और तुष्टि नव प्रकारकी तथा सिद्धि आठ प्रकार की है ॥ ४७ ॥

पञ्चानां विपर्ययाणामवान्तरभेदमाह—

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः ।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः ॥ ४८ ॥

भेदस्तमस इति । अष्टसु प्रकृतिमहदहङ्कारपञ्चतन्मात्रेष्वात्मबुद्धिरविद्या, तस्या एव तम इति सञ्ज्ञा, तस्या अष्टविधविषयकत्वादष्टविधत्वम् । अणिमाद्यैश्वर्यं प्राप्य सिद्धोऽहमस्मीत्यात्मन्यहम्भावेनाभिमानविशेषोऽस्मिता, अणिमाद्यष्टै-(१)श्वर्यविषयकत्वात् तस्या अष्टविधत्वम्, सैव च मोहसञ्ज्ञिका । मोहस्य चेति चकारादष्टविध इत्यन्वेति । शब्दादिषु पञ्चसु विषयेषु दिव्यादिव्यतया दशविधेषूपादेयत्वबुद्ध्या रागः, स एव महामोहः, विषयस्य दशविधत्वादस्य दशविधत्वम् । परेण भुज्यमानेषु दशसु शब्दादिविषयेषु परेण प्राप्तेषु चाणिमादिष्वष्टसु द्वेषस्तामिस्राख्यः, अष्टादशविषयत्वादस्याष्टादशविधत्वम् । अभिनिवेशस्त्रासः अन्धतामिस्राख्यः, शब्दादयो दशाणिमाद्यैश्वर्यं चाष्टविधं केषाञ्चिद्भविष्यति चेति भयम्, अष्टादशविषयकत्वादष्टादशविधम् । तदेवं विपर्ययभेदा द्व्यधिकषष्ठिरिति ॥४८॥

हिंदी—प्रश्न—इनमेंसे पांच प्रकारके विवर्ययोंके अवान्तर-भीतरी भेद कितने हैं ?

उत्तर—प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म तन्मात्रा रूप आठ अनात्म पदार्थों के आत्मज्ञानरूप अविद्याको सांख्योंने तम कहा है इसके आठ

मेकादशानां वधात् स्वस्वविषयग्रहणासामर्थ्यादिकादश, तद्द्वारा बुद्धिगतनवविधतुष्टीनां विपर्यया नव, अणिमाद्यष्टसिद्धीनां चाष्टाविति मिलित्वाऽष्टाविंशतिभेदाऽशक्तिरिति विवेकः ।

(१) ननु अस्मितायाअष्टविधत्वमिति कुतो ज्ञातमत आह अणिमेति ।

पदार्थ विषय होनेसे यह तम आठ प्रकारका होता है। अणिमादि रूप आठ प्रकारके ऐश्वर्यको पाकर 'मैं सिद्ध हूं' इस प्रकारके आत्मामें अहंभाव रूप अभिमानको योगदर्शनमें अस्मिता कहा है उसीको सांख्यमतमें 'मोह' कहा जाता है, इसके भी आठ प्रकारके ऐश्वर्य विषय होनेसे आठ भेद हैं। लौकिक तथा अलौकिक दो प्रकारके शब्द, स्पर्श आदि पांच विषयोंमें चित्तकी आसक्तिको योगदर्शन में राग तथा सांख्यमें महामोह माना है, इसके दस विषय होनेसे दस भेद हैं। दूसरे पुरुषसे भोगे जाने वाले दिव्य अदिव्य भेदसे दस, पांच शब्दादि विषय तथा आठ प्रकारके अणिमादि ऐश्वर्योंमें बुराईको द्वेष कहते हैं जिसे सांख्यमें तामिस्र कहा गया है, यह दश विषय तथा आठ ऐश्वर्योंमें होता है इसलिये इसके अठारह भेद हैं। जब देवतादि सात्त्विक प्राणी आठ प्रकारके अणिमादि ऐश्वर्यको पाकर दिव्यादिव्य दस शब्दादि विषयोंको भोगते हैं तो दैत्यादि तामस प्राणी उनका घात न करे ऐसा उन्हें भय होता है इसी भयको अभिनिवेश या 'अन्धतामिस्र' कहते हैं इसके भी पूर्वोक्त अठारह विषय होने से अठारह भेद हैं। इस प्रकार सब मिलकर विपर्ययके बासठ भेद हैं॥ ४८॥

अशक्तेरष्टाविंशतिभेदानाह—

एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदशधा च बुद्धेर्विपर्ययात् तुष्टिसिद्धीनाम्॥ ४९॥

एकादशेति। एकादशेन्द्रियाणां श्रोत्रत्वगक्षिरसनघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थमनसां वधाः वैगुण्यानि यथा, यथासङ्ख्यम्—

बाधिर्यं कुष्ठितान्धत्वं जडताऽजिघ्रता तथा।
मूकता कौण्य(१)पङ्गुत्वक्लैब्योदावर्तमत्तताः॥

एतद्धेतुका स्वव्यापारे बुद्धेरशक्तिरिति सह बुद्धिवधैरित्युक्तम्। अधुना कति बुद्धेः स्वरूपतो वधास्तत्राह सप्तदशधेति। तुष्टिनवधा वक्ष्यते, एवं सिद्धिरप्यष्टधा, तेषां(२) विपर्ययाद् व्यतिरेकादिति॥ ४९॥

हिन्दी—प्रश्न—अशक्तिके अठ्ठाइस भेद कौन से हैं।

उत्तर—१ बाधिर्य (बहिरापन) २ कुष्ठिता (स्पर्शन शक्ति का नाश)

(१) कुष्ठिता—त्वक्शक्तिशून्यता, जड़ता रसनाशक्तिविरहः, कूणता—हस्तदोषः। अन्यत् सुगमम्। (२) पुंस्त्वं वधाभिप्रायम्।

३ अन्धत्व (अन्धेपना) ४ जडता (जिह्वाशक्तिकानाश) ५ अजिघ्रता (घ्राणेन्द्रियकी विकलता) ६ मूकता (गूंगापन) ७ कौण्य (लूलापन) ८ पङ्गुत्व (लंगडापन) ९ क्लैब्य (नपंसकता) १० उदावर्त्त (पुरीषशक्तिका नाश) ११ तथा मन्दता (मानसिकशक्तिका नाश) ऐसे ग्यारह इन्द्रियवध हैं जिनसे बुद्धिवध होनेके कारण ग्यारह प्रकारके और नौ प्रकारकी तुष्टिके तथा आठ प्रकारकी सिद्धिके विपर्यय-(विपरीतता) से होने वाले स्परूप से बुद्धि के बध सत्रह होते हैं इस प्रकार सब मिलाकर अठ्ठाइस बुद्धिके वधोको ही सांख्यशास्त्रमें अठ्ठाइस प्रकारकी अशक्ति माना गया ॥ ४९ ॥

तुष्टेर्नव भेदानाह—

आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः ।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च नव तुष्टयोऽभिमताः ॥ ५० ॥

आध्यात्मिक्यश्चेति । प्रकृत्यादिभिन्नत्वेनात्मसाक्षात्कारो मोक्षोपायः, परन्तु साक्षात्कारः प्रकृतेः परिणामविशेषः प्रकृतित एव भविष्ययीति कृत्वा तत्र न यतते तस्य प्रकृत्या[१]ख्या तुष्टिरम्भ इत्युच्चते । कश्चिदेवं चिन्तयति—न प्रकृतिमात्रात् स भवति तथा सति गृहस्थस्यापि सम्भवेत् किन्तु सन्यासाश्रमोपादानात् स भविष्यतीत्यालस्यादिना तुष्ट्या तिष्ठति, तस्योपदाना[२]ख्या सलिलमित्युच्यते, सैव परिव्रज्याख्या तुष्टिरिति गीयते । प्रव्रज्याख्यापि कालविशेषं प्राप्य तं करिष्यतीति, अतः कालस्यैव प्राधान्याज्ज्ञानप्राप्तिकाले ज्ञानं भविष्यत्येवेत्यलं प्रयासेनेति तुष्टिः कालाख्या[३] मेघ इत्युच्यते । कालविशेषेऽपि स भाग्यबलादेव भवति, अतो भाग्यमेव हेतुर्नान्यदित्यलं प्रयासैरिति तुष्टिर्भाग्याख्या[४] वृष्टिरित्युच्यते । एताश्चतस्र (१) आध्यात्मिक्यः ।

विषयोपरमो वैराग्यं, तेन तुष्टयः पञ्च बाह्याः, प्रकृत्यादिभिन्नत्वेनात्मज्ञानाभावात्, तथाहि—अर्जनरक्षणक्षयभोगहिंसासु दोषदर्शनात् पञ्चोपरमा भवन्ति, तद्धेतुकत्वात् तुष्टयोऽपि पञ्च भवन्ति यथा-अर्जनोपाया भिक्षाटनादयः क्लेशदाः, अतोऽलं प्रयासैरिति या तुष्टिः सा [१]पारमुच्यते । तथा कथञ्चिदर्जितस्य चौरादितो रक्षणमपि कष्टमिति कृत्वा या तुष्टिः सा सुपाराख्या । [२] एवं कथञ्चिद्र-

(१) अध्यात्मनि भवा आध्यात्मिक्यः, प्रकृत्यादिभिन्नमात्मानं ज्ञात्वाप्यसच्चिन्तनोपदेशादिना यो नात्मश्रवणादौ प्रयतते तस्यात्मविषयिण्यश्चतस्र उक्तास्तुष्टयो

क्षितमपि भोगात् क्षयं गमिष्यत्येवेति कृत्वा या तुष्टिः सा पारापारमुच्यते।[3] एवं शब्दादिभोगाभ्यासात् प्रवर्तन्ते (१) कामाः, ते च पुनर्विषयप्राप्तौ अप्राप्तौ च कामिनो (२) दुन्वन्तीति कृत्वा या तुष्टिः सा—अनुत्तमाम्भ[4] इत्युच्यये। एवं भोगेऽवश्यं प्राणिहिंसा जायत एवेति दोषदर्शनाद्विपयोपरमे या तुष्टिः सा—उत्तमाम्भ[5] इत्युच्यते। तदेवमाध्यात्मिकीभिश्चतसृभिर्वाह्याभिः पञ्चभिर्नव तुष्टयोऽभिमताः।

अम्भः सलिलं मेघो वृष्टिः पारं तथा सुपारं च।
अन्यच्च पारापारमनुत्तमाम्भ उत्तमाम्भश्च ॥ इति ॥ ५० ॥

हिंदी—प्रश्न—तुष्टिके नौ भेद कौनसे हैं ?

उत्तर—चार प्रकारकी–प्रकृति, उपादानकाल तथा भाग्य नामकी आध्यात्मिक (भीतरी तत्त्वोंके विषयमें होनेवाली) तथा पांच प्रकारके विषयोंमें उपरति होनेसे पांच प्रकारकी वाह्य ऐसी नौ प्रकार की तुष्टि है। (१) जिसमेंसे प्रकृत्यादिकोंसे भिन्न आत्मतत्त्वके साक्षात्कार से मुक्ति अवश्य होती है परन्तु वह साक्षात्कार प्रकृतिका ही परिणाम होनेसे प्रकृतिसे ही हो जायगा, उसके लिए ध्यानादिकोंकी क्या आवश्यकता है? ऐसा समझकर ध्यानादि यत्न छोड़नेको प्रकृति तुष्टि कहते हैं, जिसकी 'अम्भ' ऐसी भी संज्ञा सांख्यशास्त्रमें कही है। (२) और जिसे केवल प्रकृतिसे ही उक्त साक्षात्कार नहीं हो सकता यदि हो तो प्रकृति के सर्वसाधारण होनेसे सभीको होगा इसलिये संन्यास लेनेसे होगा, ध्यानादिकोंकी क्या आवश्यकता है? ऐसा समझकर या किसीके उपदेशसे जो तुष्टि होती है, उसे उपादान तुष्टि कहते हैं जिसकी 'सलिल' ऐसी शास्त्रमें संज्ञा दी है। (३) और किसीको संन्यास लेने पर भी समय पूर्ण होने पर ही ज्ञानकी सिद्धि मिल सकेगी ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है उसे काल नामकी तुष्टि कहते हैं, जिसकी सांख्यमें "मेघ" या "ओघ" ऐसा संज्ञा है। (४) समय पूरा हो या न हो भाग्यमें रहने से ही आत्म–साक्षात्कार होता है ऐसा समझ कर भाग्य ही पर भरोसा रखनेसे जो तुष्टि होती है उसे भाग्य नामकी तुष्टि कहते हैं जिसका 'वृष्टि' ऐसा शास्त्रमें नाम रक्खा गया है। ये चार 'प्रकृति भिन्न आत्मा है' ऐसा जान कर आलस्यादि कारणोंसे

भवन्तीत्यतस्ता आध्यात्मिक्य उच्यन्ते इत्यर्थः। (१) प्रवर्धन्त इति वरः पाठः। (२) पीडयन्ति इति।

ध्यानादिक करनेमें प्रवृत्ति न होनेसे तुष्टि होती हैं इस कारणसे इन्हें आध्यात्मिक तुष्टि कहते हैं। इसी प्रकार आत्मासे भिन्न प्रकृत्यादि पदार्थोंको आत्मा समझ कर जो विषयोंसे उपरति (वैराग्य) से बाह्य तुष्टि होती है वह वैराग्यके कारण विषयोंके पांच प्रकारकी है जैसे पांच वैराग्यके विषय हैं उसी तरह उपरति भी अर्जन (पैदा करना), रक्षण (रक्षा करना), क्षय (नाश), भोग (उपभोग) तथा हिंसा (द्रोह) इस प्रकार पांच दोषोंकी दृष्टिसे होती है। इसलिये भी यह तुष्टि पांच प्रकारकी है (१) भीख मांगना, सेवा करना इत्यादि पैदा करनेके उपायोंमें बड़ा दुःख है ऐसा दोष समझ कर जो सन्तोष होता है उसे प्रथम 'पार' नामक तुष्टि कहते हैं। (२) किसी तरह पैदा किये धन-संपत्तिकी चोर, डाकू इत्यादिकोंसे रक्षा करनेमें भी बड़ा कष्ट है यह दोष देख कर जो सन्तोष होता है उसी 'सुपार' नामकी तुष्टि कहते हैं। (३) किसी प्रकार रक्षा किये धनका भोगसे क्षय हो जायगा इस प्रकार विनाश दोष–दृष्टिसे जो तुष्टि होती है उसे 'पारापार' ऐसा कहते हैं। (४) तथा विषयोंके भोगसे और भी तृष्णा बढ़ती जाती है और उनके न मिलनेसे कामी पुरुषको नाना प्रकारका दुःख ही होता है इस प्रकार भोगमें दोष–दृष्टिसे जो तुष्टि होती है उसे 'अनुत्तमांभ' (५) तथा विना प्राणियोंके घात और डाहके विषयोंका भोग होना कठिन है इस प्रकार हिंसादोषके विचारसे जो सन्तोष होता है उस पांचवीं तुष्टिको 'उत्तमाम्भ' ऐसा कहते हैं ॥ ५० ॥

अष्ट सिद्धीराह—

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः ।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः ॥ ५१ ॥

ऊह इति। [1]ऊहो विचारसामर्थ्यम्, विशेषदर्शनमिति (१)यावत्। शब्दः[2] क्रियाकारकभावापन्नपदसमुदायव्युत्पत्तिः। अध्ययनं[3] गुरुमुखतः शास्त्रार्थज्ञानम्। दुःखविघाता दुःखशमनोपायास्त्रय[4] इति, दुःखानां (२) त्रित्वात् शमनोपायानामपि त्रित्वम्। सुहृत्प्राप्तिः[5] (३) आध्यात्मिकजनसङ्गः। दानं दैष्

(१) आगमाविरोधिन्यायेनागमार्थपरीक्षम्, परीक्षणं च संशयपूर्वपक्षनिरानोसेत्तरपक्षव्यवस्थापनं यन्मननमाचक्षते इति मिश्राः। (२) आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकभेदेनेत्यर्थः। (३) आध्यात्मिका जना ज्ञानिनः सुहृदादयस्तेषां

शोधने इति धातोर्बाह्याभ्यन्तरशौचम् (१)। सिद्ध्यत्यनयेति सिद्धिः। तत्रदुःख-विघातसिद्धिः फलत्वान्मुख्या, अन्यास्तु पञ्च तत्साधनत्वाद् गौण्य इति विवेकः (२)। तत्रोहादेः संज्ञाविशेष आकरे (३) तथा 'तारतारसुतारप्रमोदमुदित-मोदमानरम्यकसदामुदिताख्याः सिद्धय इति।

असामुपादेयत्वं विपर्ययाशक्तितुष्टीनां तु हेयत्वं ज्ञापयिष्यन्नाह सिद्धेः पूर्वोऽकुंशस्त्रिविध इति। पूर्वः पूर्वोक्तो विपर्ययाशक्तितुष्टिरूपस्त्रिविधः सिद्धेरकुंशः, कारणविघटनादिद्वारा निवारकः, अतः सिद्धिपरिपन्थित्वादकुंश इव (४), इति विपर्ययाशक्तितुष्ट्यो हेया एवेति भावः॥ ५१॥

हिंदी—प्रश्न—आठ प्रकारकी सिद्धियोंके भेद कौनसे हैं?

उत्तर—ऊह, शब्द, अध्ययन तथा तीन प्रकारके दुःखोंका विघात, सुहृत्प्राप्ति तथा दान ऐसी आठ सिद्धियां हैं। जिनमेंसे आध्यात्मिकादि त्रिविध दुःखोंकी विघात रूप तीन सिद्धियां मुख्य फल होनेसे मुख्य सिद्धियां हैं और बांकी पांच उनका साधन होनेसे गौण हैं। जिनमें विना उपदेशादिके पूर्वजन्मके अभ्यास के बलसे स्वयं विचारसामर्थ्य रूप सिद्धिको ऊह कहते हैं। जो दूसरेके सांख्य-शास्त्रके पाठको सुनकर क्रियाकारकादिरूप पदसमुदायात्मक शब्दसे ज्ञान प्राप्त होता है उसे शब्द सिद्धि, तथा गुरुमुखसें शास्त्रके अर्थका ज्ञान होना अध्ययन नामकी सिद्धि कहलाती है। तथा दुःखविघातरूप सिद्धियां दुःखके तीन होनेसे तीन प्रकारकी हैं, यह प्रसिद्ध ही है। ज्ञानी मित्रकी प्राप्तिसे ज्ञान प्राप्त होता है इसलिए सुहृत्प्राप्ति तथा 'दैप् शोधने' इस धात्वर्थके अनुसार विवेक ज्ञानसे बाह्य तथा आभ्यन्तर शुद्धि अथवा धनदानसे भी ज्ञानी प्रसन्न होकर दान देता है इसलिये दान भी एक सिद्धि है। परन्तु वाचस्पति मिश्रने इन गौण पांच सिद्धियोंमें भी कारण–कार्य भावके अनुसार पहिले अध्ययन सिद्धि जो अक्षर–ज्ञानरूप है तथा उससे होने वाले अर्थज्ञानरूप शब्द सिद्धिका उसके बाद वर्णन कर बाद में ऊह की सिद्धि कही है, जिनमें पहिली दो श्रवण और ऊहको मनन कहा है और इनके बाद गुरु इत्यादि ज्ञानी मित्रकी प्राप्ति और अन्तमें विवेक-ज्ञानकी शुद्धिरूप दान सिद्धि कही है।

सञ्ज्ञाज्ज्ञानाधिगमो भवतीति भावः। (१) विवेकज्ञानशुद्धिरिति मिश्राः। (२) मिश्रमतेनेदं बोध्यम् न गौडपादमते। (३) भाष्ये। (४) निबारक इति पूर्वेणानुपञ्चनीयम्।

इन आठ सिद्धियोंकी कारिकोक्त क्रमसे तार १ सुतार २ तारतार ३ प्रमाद ४ मुदित ५ मोदमान ६ रम्यक ७ तथा सदामुदित ८ ऐसी सांख्य शास्त्रमें संज्ञायें बतलाई हैं। पूर्वोक्त चार प्रकारके विपर्ययादि बुद्धिसर्गोंमेंसे सिद्धिको छोड़ कर विपर्यय, अशक्ति तथा तुष्टि ये तीनो मुमुक्षुको त्याज्य हैं क्योंकि सिद्धिकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक हैं और सिद्धि ही ग्राह्य है ॥ ५१ ॥

ननु भोगो विषयमन्तरेण न भवतीत्याकाशादिसर्ग एवास्तु कृतं महदाद्यतीन्द्रियसर्गेण तत्राह—

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिर्वृत्तिः ।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः ॥५२॥

न विना भावैरिति । भावैः प्रत्यक्षैर्विषयैर्विना लिङ्गं महदाद्यतीन्द्रियवृन्दं न भोगसाधनमित्यर्थः । लिङ्गेन महदादिना विना भावनां विषयाणां न निर्वृत्तिः = न भोगसाधनत्वम् । अयमभिप्रायः—नहि विषयः स्वरूपतो भोगहेतुः सर्वेषां सर्वविषयभोगापत्तेः, अपितु ज्ञात एव, ज्ञानं चेन्द्रियान्तःकरणैर्विना (१) नेत्युभयस्वीकारः, तस्माद् द्वयोरप्यावश्यकत्वात् लिङ्गाख्यः = लिङ्ग्यत एव नतु साक्षात्क्रियत इति लिङ्गं महदाद्यतीन्द्रियवर्गः, भावाख्यः = भूयते प्राप्यतेऽर्थादिन्द्रियेणेति विषयवर्गः प्रत्यक्षसिद्धः ॥ ५२ ॥

हिंदी—प्रश्न—भोगरूप पुरुषार्थ विना विषयोंके नहीं हो सकता इसलिये आकाशादि पांच जड़ पदार्थों की सृष्टि मानना ठीक है परन्तु प्रकाशरूप अतीन्द्रिय महत्तत्त्वादि अतीन्द्रिय पदार्थोंकी सृष्टि क्यों मानी जाय ?

उत्तर—विना भाव–विषयोंके लिङ्ग–महत्तत्वादि अतीन्द्रिय पदार्थमें भोगके साधन नहीं हो सकते और महत्तत्वादि लिङ्ग पदार्थों के विना विषयोंमें भोग साधनता नहीं आसकती अर्थात् विषय केवल अपने स्वरूपसे भोगके साधक नहीं हो सकते, यदि ऐसा हो तो सबको सब विषयोंके भोग होने लगेंगे, इसलिये विषयों का ज्ञान ही भोगका साधन मानना पड़ेगा और वह ज्ञान विना इन्द्रिय, अन्तःकरण इत्यादि अतीन्द्रिय पदार्थोंके हो नहीं सकता, इस लिये दोनोंकी आवश्यकता होनेसे अनुमति महत्तत्त्वादि पदार्थोंका सृष्टि तथा इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होनेवाले भाव–आकाशादि भूत पदार्थोंकी भी सृष्टि मानी गयी है ॥५२॥

---

(१) भोगश्च विषयैर्विना नेत्यत्र पूरणीयम् ।

भौतिकसर्गविभागमाह—

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति ।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥ ५३ ॥

अष्टविकल्प इति । ब्राह्म[1]प्राजा[2]पत्यैन्द्र[3]पित्र्य[4]गान्ध[5]र्वयाक्ष[6]राक्ष[7]सपैशा[8]च भेदादष्टविधो दैव इत्यर्थः । तैर्यग्योन इति । पशुपक्षिसर्पकीटस्थावरभेदात् (१) पञ्चविध इत्यर्थः । मानुष्यश्चैकविधः, समासत :–(२) ब्राह्मणत्वाद्यवान्तर-जातिभेदाविवक्षयेति । भौतिको दैहिकः, तेन घटादिनिरासः । (३) केचित्तु घटादेः स्थावरेऽन्तर्भावं वदन्ति ॥ ५३ ॥

हिंदी—प्रश्न—भौतिक सृष्टि कितने प्रकार की है ?

उत्तर—१ ब्राह्म २ प्राजापत्य ३ ऐन्द्र ४ पैत्र ५ गान्धर्व ६ याक्ष ७ राक्षस तथा ८ पैशाच ऐसे आठ प्रकारकी देवजातिकी सृष्टि तथा पशु (चौपायें—गाय आदि) पक्षि (पंख वाले गीध आदि) सरीसृप (सरकने वाले सांप आदि) कीट (कीड़े, मकोड़े आदि) तथा स्थावर (एक जगह रहने वाले पेड़ इत्यादि) ऐसे पांच प्रकारकी तिर्यग्योनियोंकी सृष्टि, और एक प्रकारकी मनुष्योंकी (१) सृष्टि ऐसी संक्षेपसे सब मिलाकर चौदह प्रकारकी भौतिक सृष्टि मानी गई है ॥

भौतिकस्य विशेषमाह (४)

ऊर्ध्वं सत्त्वविशालस्तमोविशालश्च मूलतः सर्गः
मध्ये रजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः ॥ ५४ ॥

ऊर्ध्वमिति । भूलोकादूर्ध्वं सत्त्वविशालः सत्त्वबहुलः, तत्रत्येषु रजस्त-मसोः सत्त्वेऽपि सत्त्वाधिक्यश्रवणात् । मूलतोऽधःपतनशीलस्तैर्यग्योनस्तमो-

---

(१) ब्राह्मण, क्षत्रिय, इत्यादि अवान्तर भेदोंको हाथ—पैर इत्यादि अव-यवरचना समान होनेसे अलग नहीं कहा है ।

---

(१) पशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावरभेदात् इत्यन्ये । (२) संक्षेपतस्त्रिविधोऽयं भूतसर्ग इत्यन्ये । (३) मिश्राः । इति चतुर्दशभूतानीति गौडपादाः । (४) भौति-कस्यास्य सर्गस्य चैतन्योत्कर्षतारतम्याभ्यामूर्ध्वाधोमध्यभावेन त्रैविध्यमाहेति मिश्राः । त्रिलोक्यां गुणत्रये कुत्र कस्याधिक्यमित्युच्यते इति गौडपादाः ।

विशालस्तमोवहुलः, तेषु सत्त्वरजसोः सत्त्वेऽपि तमस आधिक्योपलब्धेः । मध्ये भूलोके रजोविशालः सत्त्वतमसोः सत्त्वेऽपि धर्माधर्मप्रवृत्तिपरत्वदर्शनेन रजस आधिक्यकल्पनात् । (१) ब्रह्मादीति । सोऽयं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः सर्गो लोक-भेदेनैवंसंस्थितिक इत्यर्थः । स्तम्बः (२) स्थावरः ।। ५४ ।।

हिंदी—प्रश्न—इस चौदह प्रकारकी विस्तृत भौतिक सृष्टिका संक्षेप क्या है ?

उत्तर—आठ प्रकारकी जो दैव—सृष्टि भूलोक से ऊपरी स्वर्गादि लोकमें है वह सत्वविशाल है, अर्थात् रज तथा तमके रहने पर भी उसमें सत्त्वगुण अधिक है, और नीचे गिरने वाली तिर्यग्योनिकी पांच जातियों में सत्त्व तथा रज के रहने पर भी तमोगुणकी अधिकताके कारण तमोगुण वहुत है, तथा भूलोकमें रहने-वाली एक प्रकारकी मनुष्य जातिकी सारी सृष्टिमें सत्त्व तथा तमके रहने पर भी धर्माधर्ममें अधिकतर प्रवृत्ति होनेके कारण रजोगुण अधिक होनेसे रजोगुण अधिक है । इसमें ब्रह्मासे लेकर वृक्षादिकों तक सारी सृष्टिका निवेश संक्षेपसे आजाता है, अर्थात् लिङ्ग—सृष्टि और सूक्ष्म तन्मात्रा सृष्टि ऐसी दो प्रकारकी अभौतिक सृष्टि तथा पूर्वोक्त १४ प्रकारकी भौतिक सृष्टिका इसमें संग्रह होता है ।। ५४ ।।

तदेवं सर्गं दर्शयित्वा तस्यापवर्गसाधनवैराग्योपयोगिनीं दुःखतामाह—

तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः ।
लिङ्गस्याविनिवृत्तेस्तस्माद् दुखं स्वभावेन ।। ५५ ।।

तत्र जरामरणेति । यतः पुरुषः स्वयं चेतनोऽपि तत्र लोकत्रयाख्ये सर्गे जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति, तस्माद् दुखं स्वभावेन=स्वत एव सर्गो दुःखरूपः, विवेकिनामिति शेषः, यथाह भगवान् पतञ्जलिः—'परिणामताप-संस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिन' इति । (३) अत्र परिणामपदेन जरादिदुःखं बोध्यम् , तापपदेन 'मा न भूवं हि भूयास'-मिति मरणत्रासदुःखं बोध्यम्, संस्कारपदेन पुनर्जननादिदुःखं बोध्यम् । कियन्तं

(१) तामिमां लोकसंस्थितिं सङ्क्षिपति ब्रह्मादीति । (२) वृक्षादिः । (३) परिणामेत्यादियोगसूत्रं व्याचष्टे अत्रेति ।

कालं दुःखं प्राप्नोति तदाह (१) लिंगस्याविनिवृत्तेः, यावल्लिङ्गं महदादि न निवर्तते तावत्, ज्ञानेन लिङ्गस्य निवृत्तौ तु मोक्षमधिगच्छतीति भावः ॥५५॥

परन्तु हे शिष्यो ! इस प्रकारकी सारी सृष्टि दुःखदायक है ऐसा जाननेसे मुक्तिमें उपयोगी वैराग्यरूप साधन उत्पन्न होता है, क्योंकि चेतन-प्रकाशरूप भी आत्मा पूर्वोक्त चतुर्दश लोकसृष्टि या शरीरादिकोंमें वृद्धावस्था, मरण इत्यादिकोंसे महत्तत्वादि लिङ्गोंकी निवृत्ति न होनेके कारण या जबतक इनकी निवृत्ति नहीं होती तब तक-अनेक प्रकारके दुःखोंको प्राप्त करता है, इसलिये स्वभावतः सृष्टिमें दुःख ही है अर्थात् ज्ञानियोंके लिये सारा संसार दुःखरूप है, इसीलिये योगदर्शनमें कहा है "परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वमेव दुःखं विवेकिनः" ॥ अर्थात् बुढौतीके दुःखसे तथा मरणके दुःखसे और बार २ जन्म लेनेके दुःखसे भी ज्ञानीके लिये सारा जगत् दुःखमय है ॥ ५५ ॥

सर्गस्य (२) प्रकृतिमात्रारब्धत्वं वक्तुमुपसंहरति—

इत्येष प्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्यन्तः ।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः ॥ ५६ ॥

इत्येष इति । इतीत्युपसंहारे, एष = महदादिविशेषभूतपर्यन्तः, प्रकृतिकृतः = प्रकृत्यैवोक्तरीत्या कृतः, नेश्वरेण न वाऽदृष्टेनेत्यर्थः, विशेषभूतं पृथिवी । अयमभिसन्धिः (३) धर्मसापेक्षत्वनिरपेक्षत्वविकल्पग्राहग्रस्तत्वान्मानाभावाच्च नेश्वरः कारणम्, नाप्यदृष्टम्, कार्यस्य कारणत्वायोगात्, प्रलयकालीनानारम्भकपरमाण्वादिक्रियादौ (४) व्यभिचारेण कार्यमात्रेऽदृष्टादीनामकारणत्वाच्चेति दिक् । अचे-

---

(१) कुतः पुनर्लिङ्गसम्बन्धि दुःखं पुरुषस्य चेतनस्येत्यत आह लिङ्गस्येति । पुरुषाद्भेदाग्रहाल्लिङ्गधर्मानात्मन्यध्यवस्यति पुरुष इत्यर्थ इति वाचस्पतिमिश्राः । (२) अनेन सर्गकारणविप्रतिपत्तिनिरासः सूचितः । (३) धर्मेति । अत्र धर्मपदमदृष्टवाचकन्तथा चेश्वरोऽदृष्टमपेक्ष्य सर्गं विदधात्यनपेक्ष्य वा ? आद्येऽदृष्टेनैव जगत्सर्गसम्भवे कृतमीश्वराधिष्ठानेन स्वमतेऽचेतनस्यापि प्रवृत्तेस्साधयिष्यमाणत्वात् निर्धर्मकस्य क्रियाशून्यत्वेनाधिष्टातृत्वासम्भवाच्च, अन्त्ये जगद्वैचित्र्यानुपपत्तिरिति विकल्पद्वयरूपग्राहग्रस्तत्वात्साङ्ख्यप्रक्रियायामीश्वरसत्ताङ्गीकारे प्रमाणाभावाच्चेत्यर्थः । (४) तदा जीवाभावेनादृष्टस्य जन्यस्यासम्भवाद्व्यभिचारेणे-

तनत्वेन स्वप्रयोजनाभावात् एष आरम्भः परार्थं एव। ननु कस्यार्थे आरम्भस्तत्राह प्रतिपुरुषेति। प्रत्येकपुरुषस्येत्यर्थः। अत्र भोजयितुमिति विहाय विमोक्षार्थमित्युक्तिस्तु एकस्य मोक्षेऽपि सर्गस्य नाशो नास्ति (१) सर्वसाधारणत्वादिति ज्ञापनाय, अत एव प्रतिपुरुषेत्युक्तम्, आह चैवं समानतन्त्रे भगवान् पतञ्जलिः—'तदर्थ एव दृश्यास्यात्मा, कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वा'दिति। परार्थारम्भे न कोऽपि विवाद इत्याह स्वार्थ इवेति। यथाऽन्यो जनः स्वार्थे प्रवर्तते तथैवास्य परार्थ आरम्भो घटत एव, प्रयोजनवत्त्वमात्रस्य प्रवृत्तिमूलत्वादित्यास्तां विस्तरः ॥ ५६ ॥

हिंदी—परन्तु महत्तत्त्वसे लेकर महाभूत पर्यन्त यह सारी सृष्टि साङ्ख्यमतसिद्ध प्रकृतिहीसे बनी न ईश्वरसे न ब्रह्मसे, या अकारण भी नहीं है, अकारण माननेसे इस सृष्टिकी सदा सत्ता ही रहेगी, या सदा अभाव ही। अपरिणामी होनेसे ब्रह्मा का कार्य भी सृष्टिको नहीं माना जा सकता। ईश्वरको शरीर न होनेसे व्यापार के बिना 'ईश्वर भी अपने अधिष्ठानसे प्रकृतिके द्वारा जगतको बनाता है' यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि देखने में आता है कि बिना हाथ–पैर चलाये बढ़ई भी कुल्हाड़ीसे लकड़ीको काट नहीं सकता।

प्रश्न—यदि केवल प्रकृतिसे सृष्टि बनती हो तो उसके सदा ही प्रवृत्ति स्वभाव होनेसे सदा ही सृष्टिके रहनेसे किसीकी कभी मुक्ति न होगी ?

उत्तर—जिस प्रकार भात चाहने वाला भात तैयार करनेके लिये रसोई बनानेमें प्रवृत्त होकर भात तैयार होने पर उसे खाकर क्षुधासे निवृत्त होता है उसी तरह हर एक पुरुषको भोग देकर मुक्त करनेके लिये प्रवृत्त हुई प्रकृतिभी जिस पुरुषको मुक्त कर देती है उस पुरुषके लिये फिर भोग देनेके लिये प्रवृत्त नहीं होती अर्थात् प्रकृतिकी प्रवृत्ति स्वार्थके समान केवल परार्थ–पुरुषके लिये ही है ॥ ५६ ॥

नन्वचेतनायाः प्रकृतेः कथं (२) प्रवृत्तिस्तत्राह—

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य ।

त्यर्थः। (१) प्रकृतेरित्यादि।

(२) तथा च प्रवृत्तिः चेतनप्रयुक्ता प्रवृत्तित्वान्मत्प्रवृत्तिवदित्यनुमानेन

पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य ॥ ५७ ॥

वत्सेति । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वत्सविवृद्ध्यादिप्रयोजनेनैवाचेतनस्य क्षीरादेः प्रवृत्तिदर्शनात् प्रवृत्तिर्न चेतननियता किन्तूद्बुद्धादृष्टमात्रसाध्या, अतस्तद्वदेवाचेतनाया अपि प्रकृतेः पुरुषविमोक्षार्थं प्रवृत्तौ न किञ्चिद्बाधकमिति भावः । न च क्षीरप्रवृत्तेरपीश्वराधिष्ठाननिबन्धनतया प्रवृत्तेश्चेतननियतत्वमव्याहतमेव, तथा च (१) कथमिति वाच्यम् । ईश्वरे प्रमाणाभावात्, प्रामाणिकत्वेऽप्याप्तकामस्य प्रयोजनं विना प्रवर्तकत्वायोगात् । न च कारुण्यादिति वाच्यम् । सर्गात् प्राग् जीवानां दुःखित्वासम्भवेन दुःखनिवृत्तीच्छारूपकारुण्यस्यापि तस्मिन्नसम्भवात्, तस्मात् स्वयमचेतनापि प्रयोजनेनैव क्षीरादिवत् प्रवर्तत इति सिद्धम् ॥ ५७ ॥

हिंदी—प्रश्न—जड़ होने से प्रकृतिकी स्वयं प्रवृत्ति कैसे होगी ?

उत्तर—जैसे जड़ होनेपर भी गायके थनसे दुग्धकी बछड़ेके जीने तथा बढ़नेके लिये ही स्वयं प्रवृत्ति होती है अर्थात् दूध गायके थनसे खुद बहने लगता है, उसी तरह जड़ प्रकृतिकी भी हरएक पुरुषके संसार-बन्धनसे छुड़ानेके लिये भी स्वयं प्रवृत्ति होती है ऐसा माननेमें कोई बाधक नहीं है ।

प्रश्न—दूधकी प्रवृत्ति भी ईश्वर ही के प्रेरणासे होती है इसलिए विना चेतन के अधिष्ठानके प्रकृतिकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिए ईश्वर मानना आवश्यक है ?

उत्तर—यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि परिपूर्ण कामनावाला ईश्वर बिना प्रयोजन के सृष्टि करनेमें प्रकृतिको क्यों प्रवृत्त करेगा, सृष्टिके पहिले जीवोंको शरीरादिक न होनेसे दुःख न हो सकनेके कारण उसके हटानेके लिये ईश्वर करुणासे सृष्टि करानेमें प्रवृत्त होता है यह भी नहीं कहा जा सकता । परिपूर्णकाम होनेसे उसका कोई स्वार्थ भी सृष्टि करनेमें प्रयोजक नहीं हो सकता इसलिए जड़भी प्रकृति पुरुषार्थरूप प्रयोजनसे क्षीरादिकोंके समान प्रवृत्त होती है यही मानना उचित है ॥ ५७ ॥

प्रवर्तकचेतनस्यावश्यकतया जीवस्याधिष्ठेयविभुस्वरूपानभिज्ञत्वेन प्रकृतिप्रवर्तकत्वासम्भवादीश्वराधिष्ठानैव सा वाच्येति पूर्वपक्षाशयः । (१) ईश्वराधिष्ठानं विना स्वत एव प्रकृतिप्रवृत्तिः कथमित्याक्षेपाशयः ।

ननु प्रयोजनमुद्दिश्यैव (१) प्रवृत्तिर्दृष्टा न चास्यास्तदस्ति, तत्राह—

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः ।

पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम् ॥ ५८ ॥

औत्सुक्येति । औत्सुक्यमिच्छा यथेयं मया सम्भोक्तव्येति, तन्निवृत्त्यर्थं रत्यादिक्रियासु प्रवर्तते लौकिकः, अनिवृत्ताया इच्छाया दुःखदत्वात्, सा च विषयसिद्धावेव निवर्तत इति सैव फलम्, एवमव्यक्तं प्रधानमपि पुरुषार्थो मया कर्तव्य इतीच्छायां पुरुषविमोक्षरूपफलार्थं प्रवर्तते, तत्सिद्धिं विना तादृशेच्छाया अनिवृत्तेः, अनिवृत्तायाश्चानिष्टत्वात् (२), तथा च स्वार्थमुखेनैव (३) परार्थारम्भ इति न कोऽपि दोष इत्यास्तां विस्तरः ॥ ५८ ॥

हिंदी—प्रश्न—चेतनके समान जड़में प्रयोजनके उद्देशसे प्रवृत्ति कैसे होगी, क्योंकि विना प्रयोजन किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती ?

उत्तर—जैसे अपनी भात खानेकी उत्कट इच्छाको दूर करनेके लिये मनुष्य रसोई बनानेमें प्रवृत्त होता है, वैसे प्रकृतिभी मुझे पुरुषार्थ करना है ऐसी इच्छा होनेपर उससे निवृत्त होनेके लिए पुरुषके मुक्तिरूप फलके लिए प्रवृत्त होती है, क्योंकि उसके सिद्धिके विना उस इच्छाकी निवृत्ति नहीं हो सकती, इसलिए केवल परार्थ से ही प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है ॥ ५८ ॥

ननु भवतुप्रवृत्तिः प्रकृतेर्निवृत्तिस्तु कथम्, तथा च पुरुषस्यानिर्मोक्ष एव स्यादत आह—

रङ्गस्य (४) दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात् ।

पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः ५९ ॥

रंगस्येति । रङ्गपदं स्थानिपरम्, तथा च यथा नर्तकी सुप्रीता हावभावली-

---

(१) प्रयोजनमनुद्दिश्य 'मन्दोऽपि न प्रवर्तते' इति न्यायात् । अस्या जडायाः प्रकृतेः । (२) दुःखदत्वात् । (३) इच्छानिवृत्तिरूपस्वार्थद्वारैवेत्यर्थः, अस्मिन्पक्षे जडप्रकृताविच्छा कथं स्यादिति चिन्त्यम् । वस्तुतः पुरुषो भोगमनु मुच्यतामिति य इष्यमाणो मोक्षः परार्थस्तदर्थमेव प्रकृतिप्रवृत्तिरिति न कोऽपि दोषः । (४) अत्र रङ्गस्य पुरुषस्येति च कर्मणि षष्ठ्यी ।

लाविलासवती विविधालङ्कारशोभिता नृत्यगीतादिभिरात्मनं रङ्गस्यस्य सम्यादेर्दर्शयित्वा दृष्टाहमनेनेति कृतप्रयोजना धनप्राप्त्या निवर्तते, एवं प्रकृतिर्बुद्धयादिसुखदुःखान्तर्भविनात्मानं पुरुषस्य प्रकाश्य (१) त्वमन्योऽहमन्येति विवेकतो निवर्तते असंयुक्ता भवति, तथानिवृत्तिकः पुरुषो मोक्षमधिगच्छति ॥ ५९ ॥

हिन्दी—प्रश्न—इस प्रकार प्रवृत्ति होने पर भी निवृत्ति कैसे होगी यदि न हो तो पुरुष का मोक्ष न होगा ?

उत्तर—जैसे नचनी समासदोंको हावभावके साथ नाच दिखानेके बाद इनाम पाकर स्वयं नाच दिखानेसे निवृत्त हो जाती है, वैसे ही प्रकृति भी सुख-दुःखादि भोगके द्वारा पुरुषको अपना स्वरूप दिखाकर 'तू मुझसे भिन्न है, मैं मुझसे भिन्न हूं' इस प्रकारके विवेक-ज्ञान होने पर स्वयं निवृत्त हो जाती है जिससे वह पुरुष प्रकृतिसम्बन्धके छूटनेसे मुक्त हो जाता है ॥ ५९ ॥

ननु परार्थं प्रत्युपकारसम्बन्धेन प्रवृत्तिर्दृश्यते, नहि पुरुषात् कश्चित् प्रत्युपकारः प्रकृते (२) रत आह—

नानाविधैरुपायैरुपकारिण्यनुपकारिणः पुंसः ।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकं चरति ॥ ६० ॥

नानाविधैरिति । गुणवती प्रकृतिरत एवोपकारिणी पुंसः पुरुषस्य द्रष्टुरगुणस्य सच्चित्स्वभावकतया गुणातीतस्यात एवानुपकारिण उपकारासमर्थस्य नानाविधैर्महदहङ्कारेन्द्रियमनःप्रभृतिभिरु (३) पायैरर्थं प्रयोजनमपार्थकं स्वीयप्रयोजनशून्यमेव चरति, आचरति, स्वभाव एवायं गुणवतां यदनुपकारिण्यप्युपकारकरणम्, अतः परार्थं प्रत्युपकारसम्बन्धेनैव प्रवृत्तिरिति न नियमो व्यभिचारादित्यास्तां विस्तरः ॥ ६० ॥

हिंदी—प्रश्न—परार्थं कार्य करनेमें भी अपना कोई स्वार्थ होता है परन्तु

---

(१) पुरुषाय प्रकाश्य भोगं दत्वा विवेकख्यात्यात्मकं प्रकाशं च कृत्वा, निवर्तत इत्यर्थः, इदमेवाह त्वमिति । (२) अयमाक्षेपाभिप्रायः—क्रियते हि गुणवद्भ्यामुभाभ्यां स्वस्वगुणैर्मिथ उपकारः, यथा नर्तकी नृत्येन दर्शकश्च पारितोषिकदानादिना, नैवमत्र सम्भवति, प्रकृतेरेव गुणवत्त्वात् पुरुषस्य चात्यन्तं निर्गुणत्वात्, अतः पुरुषः केन गुणेनोपकरिष्यतीति । (३) उपायैः स्वपरिणामविशेषैः ।

आत्मा से तो प्रकृतिका प्रत्युपकार (उपकारका बदला) देखनेमें नहीं आता ?

उत्तर—सत्त्व, रज, तमोगुण वाली अत एव परोपकारिणी प्रकृति सच्चित् स्वभाव होनेसे निर्गुण, इसलिये उपकार करनेमें असमर्थ ऐसे पुरुषके भोग तथा अपवर्ग रूप प्रयोजनको महत्तत्त्वादि रूप साधनोंसे विना अपने किसी स्वार्थ ही के किया करती है, अर्थात् गुणवानोंका यह स्वभाव ही है कि वे उपकारका बदला न चाहते हुए भी परोपकार किया करते हैं, इसलिये यह कोई नियम नहीं है कि स्वार्थके लिये ही उपकार किया जाता है ॥ ६० ॥

स्यादेतत्, नर्तकी नृत्यं सभ्येभ्यो दर्शयित्वा धनप्राप्तचा निवृत्तापि पुनः कुतूहलात् पवर्तते यथा, तथा प्रकृतिरपि पुरुषायात्मानं दर्शयित्वा विवेकेन निवृत्तापि पुनः प्रवत्स्यंतीत्यत आह—

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति ।
या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥ ६१ ॥

प्रकृतेरिति । सुकुमारतरं (१) सलज्जम् दृष्टाऽस्मीति कृत्वा तुनः पुरुषस्य दर्शनं नोपैति दृष्टिविषया (२)न भवति, यथा कदाचित् कुलस्त्री युवती साध्वी द्वारावस्थितपुरुषेण रहसि वा गतेन दृष्टा सा व्रीडायमाणा त्वरितमन्तःप्रविशति, दृष्टाऽहमनेनेत्येवमवबुध्य(३) न दर्शनमुपैत्यन्यपुरुषस्य, एव प्रकृतिः परात्मना पुरुषेण यदा ज्ञानचक्षुषा दृष्टा सा व्रीडायमाना(४) कुलस्त्रीवत् पुनर्दर्शनं नोपैति पुरुषस्य, विवेकख्यातेरेव तत्प्रवृत्तिप्रतिबन्धकत्वादिति भावः ॥ ६१ ॥

हिन्दी—प्रश्न—जैसे नचनी नाच दिखानेके बाद इनाम पाकर उस समय नाचना छोड़ देती है पर फिर भी देखने वालोंकी इच्छा होनेसे नाचनेमें प्रवृत्त होती है वैसे प्रकृति भी पुरुषको विवेकसे अपनेको दिखाने के बाद फिर क्यों न दिखायेगी, अर्थात् निवृत्त होनेपर भी उस पुरुषके लिये फिर प्रवृत्त क्यों न होगी ?

उत्तर—जैसे कोई पतिव्रता युवती कुलाङ्गना असावधानी से माथेपरका आंचल गिरनेके कारण पराये मर्दसे एकबार देखली जाय तो वह लज्जासे नीचे

---

(१) प्रकृत्यपेक्षयेत्यादिः, नास्तीति मे मतिर्भवतीत्यन्वयः । (२) विषयभूता इत्यर्थः, तत्र दृष्टान्तमाह यथेति । (३) ज्ञात्वा । (४) व्रीडामयमाना इति योग्यः पाठः ।

मुखकर हटजाती है और फिर इस प्रकार सावधान रहती है कि जिससे उसे फिर पराया मर्द देख न सके, वैसे ही अत्यन्त सुकुमार प्रकृति भी परात्मा पुरुषसे ज्ञान दृष्टिसे एकवार भोगापवर्गके समय देखी हुई फिर उस पुरुषके दृष्टिगोचर नहीं होगी, अर्थात् विवेकज्ञानके प्रतिबन्धक होनेसे प्रकृतिकी उस पुरुषमें लज्जासे कुलाङ्गनाके समान प्रवृत्ति नहीं होती ऐसा मेरा मत है ॥ ६१ ॥

स्यादेतत्, पुरुषश्चेद्गुणोऽपरिणामी कथमस्य सुखदुःखादिरूपो बन्धः, अतो न मोक्षोऽपि, मोक्षस्य बन्धेन समानाधिकरणत्वात्, तस्मात् पुरुषविमोक्षार्थमिति रिक्तं वचः इतीमामाशङ्कामुपसंहारव्याजेनाभ्युपगच्छन्नपाकरोति—

तस्मान्न बध्यते नापि (१) मुच्यते नापि संसरति कश्चित् ।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥ ६२ ॥

तस्मादिति । वस्तुतोऽसङ्गत्वादेव पुरुषो बन्धमोक्षादिरहितोऽस्ति ।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

इति श्रुतेरिति भावः । कस्तर्हि बन्धादिमानित्यत आह संसरतीति । प्रकृतिरेव नानापुरुषाश्रया बुद्ध्यादिद्वारा तादृशी (२), तथा च बन्धादिकं बुद्धिनिष्ठमेव पुरुषे तत्संपर्कात् (३) तदगतमारोप्यन एव केवलं नतु तदप्यस्तीति भावः ॥६२॥

हिन्दी—प्रश्न—तब तो पुरुषके मोक्षके लिए प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है यह कहना असङ्गत हो जायगा, क्योंकि साङ्ख्यमतमें आत्माके निर्गुण तथा अपरिणामी होने से उसे सुख दुःखादिकोंसे बन्धन नहीं हो सकता तो उससे छुटकारा पाना भी असम्भव है, बन्धनसे छूटनेही को मोक्ष कहते हैं ?

उत्तर—जब कि आत्माको स्वाभाविक सुख दुःखादि नहीं है तब वस्तुतः वह न बंधता है, न छूटता है, न किसी पुरुषको संसार होता है, किन्तु अनेक पुरुषों के सहारेसे रहनेवाली प्रकृति ही बुद्धयादिकोंके द्वारा बन्धनादिकोको प्राप्त होती है, अर्थात् प्रकृतिके प्रथम परिणाम रूप बुद्धि ही में बन्धनादिक वस्तुतः रहते हुए भी उसके सम्बन्धसे आत्मामें आरोप किये जाते हैं, इसलिये भ्रमसे आत्मामें बन्धन तथा मुक्तिका व्यवहार होता है ॥ ६२ ॥

---

(१) 'द्धा न' इति पाठान्तरम् । वस्तुत इति तदर्थः । (२) संसरणादिमती । (३) बुद्धिगतम् ।

ननु पुरुषस्यापि प्रकृतिसम्पर्कादारोपितसुखदुःखादिकं बन्ध इत्युक्तम्, सा पुनः केन साधनेन बध्नाति मोचयति वा तदाह—

रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः ।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण ॥ ६३ ॥

रूपैरिति । पुरुषार्थं भोगं प्रति, आत्मना=बुद्धिरूपेण, आत्मानं=पुरुषं रूपैः सप्तभिः=धर्मवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यकैर्बध्नाति, पुरुषार्थं=स्वरूपावस्थानलक्षणं मोक्षं प्रति, एकेन रूपेण=ज्ञानेन, मोचयति=संसारान्निवर्तयति, एतेन वैराग्योपरत्याद्यभावेऽपि ज्ञानं मोक्षस्य कारणं भवत्येवेति ज्ञापितम्, उक्तं च तथा वेदान्तेषु—

पूर्णबाधे तदन्यौ द्वौ प्रतिबद्धौ यदा तदा ।
मोक्षो विनिश्चितः किन्तु दृष्टदुःखं न नश्यति ॥ इति ॥

द्वौ वैराग्योपरमौ, दृष्टदुःखं (१)यथोचितव्यवहारक्लेशः, तथा च विषयजिहासारूपवैराग्यस्य विषयदोषदर्शनजन्यस्य पुनर्भोगेष्वदीनतामात्रं फलं नतु मोक्षोऽपि, एवं धीनिरोधरूपोपरमस्यापि यमादिसाध्यस्य द्वैतादर्शनमेव फलं न मोक्षः, श्रुतिषु (२) ज्ञानैकलभ्यत्वकथनादित्यास्तां विस्तरः ॥ ६३ ॥

हिंदी—प्रश्न—यदि साङ्ख्यमतमें आत्माको प्रकृतिके सम्बन्धसे संसार-बन्धन इत्यादिक होते हैं तो प्रकृतिको किस कारण होते हैं ?

उत्तर—वह प्रकृति आत्माके भोग रूप कार्यके लिये बुद्धिरूप परिणामसे आत्माको धर्म-वैराग्य-ऐश्वर्य-अधर्म-अज्ञान-अवैराग्य-अनैश्वर्य-नामके पूर्वोक्त सात भावोंसे बन्धन करती है, और मोक्षरूप कार्यके लिये ज्ञानरूप एकभावसे आत्माको संसारसे छुड़ा देती है, इससे यह सिद्ध होता है कि वैराग्यादिकोंके न रहते भी ज्ञानसे मुक्ति होती है और वैराग्यादिकोंसे प्रकृतिमें लय मात्र होता है ॥ ६३ ॥

भवतु ज्ञानादेव कैवल्यं तदेव तु कस्मात् किमाकारं च, तदाह—

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।

---

(१) प्रारब्धदुःखभोग इत्यर्थः । (२) तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेत्यादिश्रुतिष्वित्यर्थः ।

अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥ ६४ ॥

एवमिति । उक्तप्रकारपुरुषगोचराभ्यासात् पुनः पुनश्चिन्तनरूपान्निदिध्यासनादेव केवलं पुरुषमात्रगोचरं ज्ञानं साक्षात्कार उत्पद्यत इत्यर्थः, एतेन निदिध्यासनसहकृतेन मनसैवात्मगोचरनिर्विकल्पकसाक्षात्कारो भवति न श्रुतानुमानाभ्याम्, तयोस्तत्रासामर्थ्यादिति बोधितम्, यथाह समानतन्त्रे भगवान् पतञ्जलिः 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वा'—दिति । आकारमाह नास्मीत्यादिना । 'अस्मी'त्यस्य न कर्तास्मीत्यर्थः, तेन बुद्धिभिन्नोऽहमिति प्राप्तम्, 'न मे' दुःखमिति शेषः, तेन दुःखाद्यारोपाभावो लब्धः, 'नाहमि'त्यनेनाहङ्कारभेदग्रहः (१) । नास्ति परिशेषो यस्मादित्यपरिशेषं = चरमम् 'तस्य सप्तधा प्रान्तभूमौ प्रज्ञे'त्यादिना योगसूत्रेणोक्तम् । अविपर्ययात् = व्यधिकरणप्रकाराभावात् (२) विशुद्धं = प्रमात्मकं मिथ्याज्ञानवासनोन्मूलनक्षमम्, एवंविध एकात्मसाक्षात्कारस्तत्त्वज्ञानपदेनोच्यत इति भावः ॥ ६४ ॥

हिंदी—प्रश्न—ज्ञान ही से मुक्ति हो, पर वह ज्ञान किस साधनसे होता है तथा उसका क्या आकार है ?

उत्तर—उक्त प्रकारसे साङ्ख्यशास्त्रमें कहे हुए पञ्चविंशति तत्त्वोंके ज्ञानके बार-बार चिन्तनरूप निदिध्यासनरूप अभ्याससे शुद्ध आत्मविषयक प्रत्यक्षात्मक कैवल्यनामक ज्ञान पैदा होता है, अर्थात् निदिध्यासनकी सहायतासे मन ही से आत्माका निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होता है न कि अनुमान अथवा आगमसे । जिसका आकार है—'नास्मि' मैं कर्ता नहीं हूं, अर्थात् मेरी आत्मा बुद्धिके कर्तृत्व धर्म से शून्य है, तथा 'न मे' मेरेमें दुःखादि धर्म नहीं हैं, और 'नाहम्' मेरेमें अहङ्कार भी वास्तविक नहीं है अथवा 'नास्मि' इससे मेरेमें कोई क्रिया (व्यापार) नहीं है, क्रियाके न होनेसे नाहम् मेरा कहीं भी कर्तृत्व नहीं है, और इसीलिए 'न मे' मेरी कहीं स्वामिता—[प्रभुत्व] नहीं है । इस आकारका अपरिशेषं—जिस ज्ञानके बाद और कुछ जानना बाकी नहीं रहता, अर्थात् अन्तिम, तथा अविपर्ययात्—

---

(१) लब्ध इति पूर्वेणान्वयः । (२) तत्त्वविषयत्वादित्यर्थः, प्रकृत्यादितत्त्वज्ञानस्य प्रकृतित्वमहत्तत्त्वपुरुषत्वादितत्तद्धर्मप्रकारेण तत्तद्धर्मिविषयकत्वात् तद्धर्मवति तद्धर्मप्रकारकज्ञानत्वात्तद्धर्माभाववति तद्धर्मप्रकारकज्ञानत्वाभावात्संशयविपर्यासरहितत्वाद्विशुद्धमित्यर्थः । अत एवाह प्रमात्मकमिति ।

संशय और मिथ्याज्ञान रूप ज्ञानके मैलेके दूर हो जानेसे, विशुद्ध—निर्मल अर्थात् मिथ्याज्ञानकी वासनाको हटानेमें समर्थ मुक्तिको देनेवाला कैवल्यज्ञान पैदा होता है ॥ ६४ ॥

तत्त्वज्ञानानन्तरं पुरुषः किं करोति (१) तदाह—

तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम् ।

प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः ॥ ६५ ॥

तेनेति । तेन पूर्वोक्तेन ज्ञानेन, निवृत्तप्रसवाम्—प्रसवा भोगभेदसाक्षात्कारादयः, तेषां जनितत्वान्निवृत्तप्रसवां (२), प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वस्थः यथा कश्चित् प्रेक्षको रङ्गस्थो गीतनृत्यादिषु वर्तमानां नर्तकीं स्वस्थो निर्विकल्पो निराकुलः पश्यति, एवं पुरुषोऽपि तासु तासु योन्यावस्थासु वर्तमानां प्रकृतिं पश्यति, इयं प्रकृतिः स्वगुणैः पुरुषान् बध्नाति मोचयति च ॥६५॥

हिंदी—और इस कैवल्य ज्ञानसे भोगापवर्गरूप कार्यको पैदा करनेसे निवृत्त—अर्थात् हट गई, तथा प्रकृति—पुरुषविवेक ज्ञानरूप तत्त्वज्ञानके सामर्थ्यसे धर्माधर्म इत्यादि सात भावरूप धर्मोंसे शून्य प्रकृतिको दर्शकके समान बैठा हुआ स्वरूप स्थित आत्मा शरीरके रहनेसे होनेवाली केवल सात्त्विक बुद्धिके बलसे देखता है, अर्थात् भेद—ज्ञानरूप तत्त्वज्ञान अभेदज्ञानरूप मिथ्याज्ञानका नाश होनेके कारण मिथ्याज्ञानरूप कारणके न रहनेसे धर्माधर्मादि कार्योंसे रहित प्रकृतिको पुरुष देख लेता है ॥ ६५ ॥

ननु नित्ययोः प्रकृतिपुरुषयोः संयोगसत्त्वात् (३) कथं तस्याः प्रसवनिवृत्तिस्तत्राह—

दृष्टा मयेत्युपेक्षक एको दृष्टाऽहमित्युपरमत्यन्या ।

सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य ॥ ६६ ॥

---

(१) किम्पुनरीदृशेन तत्त्वसाक्षात्कारेण सिध्यतीत्यत आहेति मिश्राः । (२) कृतभोगभेदसाक्षात्काराम् । अत एवार्थवशाद्विवेकख्यातिसामर्थ्यादविद्याकार्यधर्मादिसप्तरूपरहितामित्यप्यत्र योजनीयम् । (३) भोक्तृत्वभोग्यत्वयोग्यतालक्षणसत्त्वादित्यर्थः, तथा चैतयोर्निवृत्त्यभावात्कथं प्रसव निवृत्तिरिति शङ्कार्थः ।

दृष्टा मयेति। तयोः संयोगेऽपि सर्गस्य जनने प्रयोजनं प्रयुज्येतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या सहकारिकारणं नास्तीति, तयोर्मध्ये अन्या प्रकृतिः (१) उपरमति न प्रसूत इत्यन्वयः। (२) तत् कथं नास्ति तदाह—दृष्टा मयेति। तयोर्मध्ये एकः पुरुषःस्वभिन्नेयं स्वसंपर्काद्बध्नातीत्येवंगुणा प्रकृतिर्मया दृष्टेत्युपेक्षको भवत्युपरमते तद्भोगाद्यावेशरहितो भवति, यथा नर्तकीं दृष्ट्वा सभ्यः, तथा च प्रसवे पुरुषस्य प्रकृतिभेदाग्रहः सहकारी दर्शने सति तु स(३)नास्तीति भावः॥ ६६॥

हिन्दी—प्रश्न—पुरुष तथा प्रकृतिके नित्य होनेके कारण उन दोनोंके संयोगका नाश न होनेसे प्रकृति अपने कार्यौंको क्यों नहीं पैदा करेगी ?

उत्तर—उन दोनोंमें से एक आत्मा—मेरेसे भिन्न तथा अपने सम्बन्धसे पुरुषको बांधनेवाली प्रकृतिको—मैंने देख लिया ऐसा समझकर उससे हट जाता है, अर्थात् उसके भोग सम्बन्ध से दूर हो जाता है, और प्रकृति भी मुझे इस आत्माने जान लिया ऐसा समझ कर उससे हट जाती है इसलिये पूर्वोक्त योग्यताऽऽत्मक दोनोंके संयोगके रहनेपर भी उस आत्माके सम्बन्धसे प्रकृतिके कार्य नहीं पैदा होते॥६६॥

ननु—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

इत्यादिश्रुत्या तत्त्वाज्ञानानन्तरमेव मोक्षे सर्वकर्मक्षयेण देहाद्यभावसूचनात् कथं प्रकृतिदर्शनं, ज्ञाने देहस्य हेतुत्वात्, तत्राह—

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृतशरीरः॥ ६७॥

सम्यगिति। सम्यग्ज्ञानं मिथ्याज्ञानोच्छेदक्षमं ज्ञानम्, तदधिगमात् तदुत्पत्तेर्धर्मादीनां (४)देहारम्भकान्यधर्मादीनां संचितक्रियमाणानां दग्धबीजभावानाम्, अकारणं स्वाश्रये स्वफलोत्पादनासामर्थ्यम् तस्योक्तप्रमाणाद्विवक्षितविवेकेन (५) प्राप्तौ, संस्कारो देहारम्भकादृष्टम् तद्वशात्धृतशरीरस्तिष्ठति, यथा

---

(१) अहं दृष्टेत्यत्र पूरणीयम्। (२) प्रयोजनम्। अन्ये तु एकः पुरुषो मया प्रकृतिर्दृष्टेत्युपेक्षते, अन्या प्रकृतिश्च मया पुरुषो दृष्ट इति उपरमते, इत्यर्थं इत्याहुः। (३) प्रकृतिपुरुषभेदाग्रहः। (४) धर्माधर्मादिसप्तभावानामित्यर्थः। देहारम्भकान्यधर्माणाम्=प्रारब्धातिरिक्तवृत्तीनाम्। (५) सत्त्वपुरुषान्यताख्यात्यात्मकविवेकसाक्षात्कारेण।

कुलालव्यापारविगमेऽपि वेगवशाच्चक्रभ्रमिस्तिष्ठति, (१) प्रारब्धस्य भोगैकनाश्यत्वात्, अत एव 'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य' इत्युक्तं श्रुतौ, 'भोगेन त्वितरे क्षपयित्वे' ति वेदान्तेषु भगवता व्यासेन च, तथा च 'तत्त्वज्ञाने सति कर्मक्षय' इत्यस्य प्रथमं तत्त्वज्ञानप्रागभावस्य नष्टत्वाद् फलानुत्पादमात्रमर्थो न देहाद्यभावोऽपीति संक्षेपः ॥ ६७ ॥

हिन्दी—प्रश्न—'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' इत्यादि श्रुतिसे तत्त्वज्ञानके वाद ही यदि मुक्ति होती हो तो सारे कर्मों के नष्ट होनेसे शरीरादिकोंके न होनेके कारण आत्माको पूर्वोक्त प्रकृति दर्शन कैसे हो सकता है, क्योंकि ज्ञानमें शरीरादिक कारण होते हैं ?

उत्तर—मिथ्याज्ञान को नष्ट करनेमें समर्थ तत्त्वज्ञानके पैदा होनेसे प्रारब्ध कर्मोंसे भिन्न सञ्चित धर्माधर्म रूप कर्मोंके जले वीजके समान जल जानेके कारण अपने सुखदुःखादि फलोंको पैदा करनेका सामर्थ्य न होनेसे प्रारब्ध शरीरके पैदा करनेवाले अदृष्टके संस्कारसे प्रारब्ध शरीरके भोगके समाप्त होने तक (१) ज्ञानीका शरीर कुम्हारके चक्रके चलानेको छोड़ने पर भी जैसा वह वेगसे कुछ देर तक घूमा करता है, वैसे ज्ञानीका शरीर भी रहता है, अर्थात् तत्त्वज्ञान होने पर कर्मोंका नाश होता है इसका तत्त्वज्ञानके प्रागभावके नष्ट होने से फल पैदा नहीं होता यह अर्थ है न कि प्रारब्ध शरीरादियोंका नाश होना ॥ ६७ ॥

ननु यद्युत्पन्नतत्त्वज्ञानोऽपि तिष्ठति कदा तर्हि मोक्षं गच्छति, तत्राह—

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ॥ ६८ ॥

प्राप्त इति । भोगेन प्रारब्धक्षयतः शरीरस्य भेदो विनाशस्तस्मिन् प्राप्ते सति, चरितार्थत्वाद् = बुद्धितत्त्वादिद्वारा कृतभोगापवर्गलक्षणप्रयोजनकत्वात्, प्रधानस्य पुरुषं प्रति विनिवृत्तौ = संयोगाभावलक्षणलये (२) उभयम् = उभयगुणकं, कैवल्यं = दुःखविनाशं प्राप्नोति । द्वयं किं तदाह ऐकान्तिकम् =

---

(१) क्योंकि प्रारब्ध कर्मोंका भोग ही से नाश होता है ।

---

(१) ननु तत्त्वज्ञानानन्तरं मुक्तेरावश्यकत्वात्कथं देहस्थितिरत आह प्रारब्धस्येति । (२) शरीरलये इत्यर्थः ।

अवश्यभावि, आत्यन्तिकं=पुनर्दुःखजातीयानुत्पत्तिविशिष्टम् , एतद्विशेषणकत्वात् कैवल्यमुभयम् । उत्पन्नात्मसाक्षात्कारवान् पुरुषः प्रक्षीणाशेषकल्मषो भोगेन प्रारब्धक्षये सत्यवश्यमात्यन्तिकदुःखविनाशं प्राप्नोतीति समुदायार्थः ।।६८।।

हिन्दी—प्रश्न—यदि तत्वज्ञान होनेपर भी ज्ञानी रहता है तो उसे मुक्ति कैसे प्राप्त होती है ?

उत्तर—भोगसे प्रारब्ध कर्मोंका नाश होने पर शरीरका नाश होनेसे बुद्धि तत्त्वादि द्वारा जिसने भोग तथा अपवर्गरूप कार्य किया है ऐसे प्रकृतिके ज्ञानी आत्मासे हटने पर (अर्थात् संयोगाभावरूप लय होने पर) अवश्य होने वाले तथा जिसमें फिर दूसरा दुःख नहीं पैदा होता ऐसे दो प्रकारके कैवल्यको आत्मा प्राप्त करता है, अर्थात् प्रकृति तथा पुरुषके भेदज्ञानको प्रत्यक्ष देखने वाली आत्मा सारे दोषोंके क्षीण होनेसे भोगके द्वारा प्रारब्ध कर्मका क्षय होते ही उसके ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक दुःखोंका नाश अवश्य हो जाता है, इस प्रकार ज्ञानी को मुक्ति होती है ।। ६८ ।।

प्रेक्षावद्विश्वासार्थमाह—

पुरुषार्थं ज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम् ।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र (१) भूतानाम् ।।६९।।

पुरुषार्थमिति । पुरुषस्यार्थः प्रयोजनं मोक्षाख्यं यस्मात्, तादृशं ज्ञानं गुह्यं =बहूनां दुरवबोधं, परमर्षिणा =कपिलेन कथितम् । यत्रेति निमित्तसप्तमी (२) यज्ज्ञाननिमित्तमित्यर्थः ।। ६९ ।।

हिंदी—हे शिष्यो ! इस प्रकारसे मुझसे कहा हुआ तथा मुक्तिको देनेवाला यह सांख्य शास्त्रका ज्ञान जिसे मन्दबुद्धियोंको जानना कठिन है महर्षि कपिल मुनिसे वर्णित होनेके कारण प्रामाणिक है, इसलिये तुम विश्वास करो, जिस ज्ञानके लिये ही शास्त्रोंमें प्राणिमात्रकी उत्पत्ति तथा प्रलयका वर्णन किया गया है ।।६९।।

एतद् भगवता(३) यत् तत्त्वज्ञानमुक्तं तस्य कुत आगम (४)स्तत्राह—

---

(१) ज्ञाने । (२) चर्मणि द्वीपिनं हन्तीतिवत् । (३) कपिलेन ।
(४) अद्य यावदुपलब्धिः ।

एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम् ॥७०॥

एतदिति । पवित्रं = पावनं सर्वपापनाशकत्वात्, अग्र्यं = सर्वेभ्यः पवित्रेभ्यो मुख्यम् । मुनिः = कपिलः, आसुरये अनुकम्पया प्रददौ = कथितवान्, स पुनः पञ्चशिखाय व्याख्यातवान्, तेन बहुधा शिष्योपदेशद्वारा प्रकाशितमित्यर्थः ॥७०॥

हिन्दी—प्रश्न—कपिल मुनिसे कहा हुआ यह सांख्य शास्त्रका रहस्य ईश्वरकृष्णने कैसे जाना ?

उत्तर—सब पापोंके नाशक होनेसे पवित्र, तथा सब पवित्रोंमें श्रेष्ठ इस सांख्य शास्त्रके ज्ञानका कपिल महर्षिने अपने शिष्य आसुरि मुनिको, तथा उन्होंने अपने शिष्य पञ्चशिखाचार्य को बड़ी दयासे उपदेश दिया और पञ्चशिखाचार्यने इस शास्त्रका शिष्यपरम्परा द्वारा संसारमें बहुत प्रचार किया ।७०।

ईश्वरकृष्णेन किं ततः साक्षात् प्राप्तं ? तत्राह—

शिष्यपरम्परयाऽऽगतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः ।
संक्षिप्तमार्यमतिना सम्यग् विज्ञाय सिद्धान्तम् (१) ॥७१॥

शिष्यपरंपरयेति । आर्याख्यं छन्दोविशेषस्तद्विशिष्टं पद्यमप्यार्येत्युच्यते, अत उक्तमार्याभिरिति (२) किं कृत्वा ? सम्यगध्ययनभावनाभ्यां सिद्धान्तं विज्ञाय ॥

हिन्दी—प्रश्न—तो क्या ईश्वरकृष्णने भी पञ्चशिखाचार्यसे ही यह सांख्य-ज्ञान प्राप्त किया ?

उत्तर—पञ्चशिखाचार्यके शिष्य-परम्परासे इसे प्राप्त कर ज्ञानी पण्डित ईश्वर कृष्णने भी उस सांख्यशास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन तथा अभ्याससे सिद्धान्त जान कर उसे आर्या छन्दमें बनाकर अपने शिष्योंको पढ़ाया ॥ ७१ ॥

एतच्च शास्त्रार्थसूचनाच्छास्त्रं न तु प्रकरणमित्याह—

सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य ।

---

(१) राद्धान्तम् इति पाठान्तरम् । (२) संक्षिप्तमित्यनेनान्वयः संक्षेपेणोक्तमित्यर्थः ।

आख्यायिकाविरहिताः परवादविवर्जिताश्चापि ॥ ७२ ॥

इति सांख्यकारिकाग्रन्थः समाप्तः ॥ शुभम् ॥

सप्तत्यामिति। षष्ठितन्त्रस्य = पुरुषप्रकृत्यादिषष्ठिपदार्थव्युत्पादकतन्त्रस्य, येऽर्था किल सप्तत्यां = कारिकासप्ततयां कथिताः, किंभूताः ? आख्यायिका-विरहिताः = कथातद्धटितदृष्टान्तादिरहिताः, तथा परवादविर्वाजिताश्च, षड्-दर्शनोत्थापनरहिताश्चेत्यर्थः तत्र यथा कपिलोक्तषडध्याय्यां चतुर्थाऽध्याये आख्या-यिका पञ्चमे परवादः, तथात्र न वर्तत इति भावः।

षष्ठिपदार्था गणिता ग्रन्थान्तरे यथा।
पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिरहंकारो गुणास्त्रयः ॥
तन्मात्रमिन्द्रियं भूतं मौलिकार्थाः स्मृता दश।
विपर्ययः पञ्चविधस्तथोक्ता नव तुष्टयः ॥
करणानामसामर्थ्यमष्टाविंशतिधा मतम्।
इति षष्टिः पदार्थानामष्टाभिः सह सिद्धिभिः ॥ इति।

तथा चात्रैतत्षष्टिपदार्थविवेचनान्नेदं प्रकरणं किन्तु (१) तन्त्रमेवेति सिद्धम् ॥

इति श्रीरामगोविन्दतीर्थशिष्यनारायणतीर्थकृता सांख्यचन्द्रिका सम्पूर्णतामगमत् ॥ शुभमस्तु ॥

इन सत्तर आर्याओंमें जो सांख्यशास्त्रके विषय लिखे हैं वे ही साठ प्रकारके सांख्य (१) शास्त्रके पदार्थोंके सम्पूर्ण विषय हैं इसलिए यह भी शास्त्र है नकि एक प्रकरण, पर इनमें सारे छ अध्यायोंमें लिखे गये सांख्यदर्शन सूत्रोंके समान कहानियां तथा अन्य दर्शनोंकी बातें नहीं लिखी गई हैं ॥ ७२ ॥

इति सांख्यकारिका भाषानुवादः।

---

(१) शास्त्रमित्यर्थः।

---

(१) साठ पदार्थ इस प्रकार हैं—१ पुरुष, २ प्रकृति, ३ बुद्धि, ४ अहङ्कार, ५–७ तीन गुण, ८ पञ्च तन्मात्रा, ९ इन्द्रिय, १० पञ्चमहाभूत (ये दश मौलिक पदार्थ हैं) ११–१५ पांच प्रकारके विपर्यय, १६–२४ नौ प्रकारकी तुष्टि, २५-५२ अट्ठाइस प्रकारकी अशक्ति, तथा ५३-६० आठ प्रकारकी सिद्धि।

नेपाल-माहात्म्यम्

सपरिशिष्ट 'पार्वती' हिन्दी व्याख्या सहित

व्याख्याकार—पं० केदारनाथ शर्मा

प्राक्कथन—पण्डितराज राजेश्वरशास्त्री द्राविड़

आप जानते ही हैं कि राजा दिवोदास के राज्य के कुछ समय तक नेपालतीर्थ में देवता, साक्षात् रहते थे। ततः उन दिवोदास की प्रार्थना पर देवगण वहां अदृश्य रूप से निवास करने लगे। ऐसे नेपाल तीर्थ के समस्त देवमन्दिरों का—जैसे—गुह्येश्वरीदेवी, पशुपतिनाथ, चंगनारायण, तिल-माधव, सूर्यविनायक प्रभृति का वर्णन, वाङ्मती, रोषमती, गण्डकी, नारायणी नदी आदि का वर्णन, दौलागिरि, मृगेन्द्रवन आदि का सविस्तर वर्णन है।

परिशिष्ट में काठमाण्डू (नेपाल) से ४० मील दूर गुसाईंथान पर पातालगङ्गा से उत्पन्न बाणलिङ्ग का वर्णन, भीष्म-अर्जुन संवाद, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वहां के बाणलिङ्ग का चिह्न निर्धारण प्रभृति। यह परिशिष्ट १८ पुराण तथा वीरमित्रोदय, मेरुतन्त्र एवं कश्यपादि संहिता को मनन करके तथा भारत और नेपाल के विद्वानों, मठाधीशों, प्रतिष्ठित देवपूजकों की सेवा करके तथा उनसे वास्तविकता ज्ञात करके लिखा गया है।

यह ग्रन्थ सत्य, रोचक कथाओं से पूर्ण है। इसकी हिन्दी व्याख्या आजतक नहीं छपी थी। नेपालतीर्थ विषयक ऐसी पुस्तक आजतक अलभ्य थी। १३–००

कार्तिकमाहात्म्यम्

'शंकरी' हिन्दी व्याख्या, व्रतोद्यापन सहित

संपादक—पं० रामचन्द्र झा

पद्मपुराणोक्त कार्तिकमाहात्म्य ही लोक में बहु प्रसिद्ध है। पौराणिक विद्वान् इसी का पारायण करते हैं। अभी तक इसका विशुद्ध मूल संस्करण देखने को नहीं मिलता था। गवेषक विद्वान् संपादक ने प्राचीनतम पद्मपुराण के आधार पर सर्वप्रथम इस संस्करण के मूल पाठ को पदच्छेदपूर्वक सुवाच्य तथा शुद्ध कर दिया है। इसकी हिन्दी व्याख्या भी मूल के अनुरूप ही शुद्ध और सरल सुबोध शब्दों में लिखी गयी है। साथ में सांगोपांग 'कार्तिकव्रतोद्यापन पद्धति' होने से यह सटीक संस्करण सर्वोपरि सरल, सुबोध, सुवाच्य और विशुद्ध है। शीघ्र